ओ३म्

इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 07 अक्टूबर 2012

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार 07 अक्टूबर, 2012 से 13 अक्टूबर, 2012

आ. कृ. 7 – ● वि० सं०–2069 ● वर्ष 77, अंक 26, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 189 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,113 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

डी.ए.वी. पनवेल (मुम्बई) में हुआ हवन यज्ञ

डी.ए.वी. पश्चिमी क्षेत्र में सभी शैक्षणिक संस्थानों में हवन विधिपूर्वक करवाया जाता है। सभी विद्यार्थी और अध्यापक श्रद्धा से भाग लेते हैं और सबके सुख और हित के लिए कामना करते हैं।

हाल ही में डी.ए.वी. स्कूल न्यू पनवेल में विधिपूर्वक हवन किया गया। हवन हमारे पश्चिमी क्षेत्र के शैक्षणिक कार्यक्रमों का अभिन्न अंग है और हवन के माध्यम से हम विद्यार्थियों को मूल्य शिक्षण और व्यक्ति विकास सिखाते हैं।

डी.ए.वी. कालेज मैनेजिंग कमेटी के मार्ग दर्शन में हवन यज्ञ के बाद विद्यार्थियों को वैदिक संस्कृति, विरासत और शाश्वत जीवन मूल्यों की जानकारी दी गई। नये शैक्षणिक वर्ष का आरंभ हवन से किया गया।

डी.ए.वी पब्लिक स्कूल बल्लभगढ़ में औषधीय पौधे लगाये गये

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग नई दिल्ली के आदेशानुसार एवं सभा प्रधान श्री पूनम सूरी जी की सत्प्रेरणा से वातावरण की स्वच्छता और सुरक्षा के लिए तथा प्रकृति को हरा–भरा बनाने के लिए डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल वल्लभगढ़ में स्थापित इको क्लब द्वारा आयोजित्त पौधारोपण में औषधीय पौधों औषधीय पौधों–ग्वारपाठा, तुलसी, गिलोय बेल, हारसिंगार, नीम आदि पौधों का विद्यालय के अध्यापकों एवं छात्रों द्वारा आरोपण किया गया। औषधीय पौधों के साथ फलदार, फूलदार और छायादार पेड़–पौधौं का वितरण भी किया गया। आर्य युवा समाज बल्लभगढ के प्रधान एवम् प्रधानाचार्य ने सभी को औषधीय पौधों के गुण–लाभ बताते हुए कहा कि वृक्ष पर्यावरण संरक्षण का आधार हैं। हमें अधिक से अधिक वृक्ष लगाकर प्रकृति को हरा भरा रखने में योगदान देना चाहिए। इस अवसर पर विद्यार्थियों को शपथ दिलाई गई जिससे कि वो ज्यादा पेड़ पौधे लगाएँ एवम् वातावरण को शुद्ध रखने में योगदान दें। विद्यालय में इको क्लब की तरफ से औषधीय हर्बल क्यारी संरक्षित की गई है।

डी.ए.वी. अबोहर के छात्रों ने पौधारोपण के साथ समाज सेवा भी की

एल आर एस डी.ए.वी. सी. सै. मॉडल स्कूल अबोहर के विद्यार्थियों द्वारा स्थानीय सिविल हस्पताल में जाकर पौधारोपण व अन्य सामान दिया गया।

54 विद्यार्थियों का दल प्रातः ग्यारह बजे बच्चों द्वारा एकत्रित की गई राशि द्वारा खरीद गए पाँच डस्ट बिन अलग संकेतों व उक्तियों को दर्शाते बोर्ड प, नीम,पीपल, टाहली के पौधों सहित सिविल अस्पताल पहुँचे, जहाँ एस.एम.ओ. डॉ. राकेश अरोड़ा व डा. अजय मोहन शर्मा द्वारा उनका स्वागत किया गया।

विद्यार्थयों द्वारा डिजाइन फॉर चेंज के तहत अलग–अलग प्रकल्प लिए गए जिनमें स्थानीय सिविल हस्पताल की सुंदरता, पौधारोपण भी एक था। इसी के तहत हस्पताल को अलग–अलग बोर्डों, डस्टबिनों व पौधे लगा कर सुंदर बनाने का प्रथम प्रयास किया जोकि आगे भी विद्यार्थियों द्वारा पौधों की देख रेख व जल संचन करके जारी रखा जाएगा। डॉ. राकेश अरोड़ा ने पर्यवाहक प्राचार्या श्रीमती सुनीता सहगल, प्रभारी अध्यापक रुबीना हाण्डा व नीरज शर्मा का धन्यवाद करते हुए विद्यार्थियों के इस पुनीत कार्य हेतु प्रशंसा के शब्द कहे। विद्यार्थियों द्वारा चीफ फार्मासिस्ट जयपाल व अन्य नर्स स्टाफ के साथ मिलकर पौधारोपण किया गया व एमरजैंसी वार्ड, आप्रेशन थियेटर ओ.पी.डी. व. जनरल वार्ड में डस्टबिनों को लगाया गया। अस्पताल को साफ रखने हेतु निर्देशित बोर्ड भी बच्चों द्वारा लगाए गए।

बच्चों द्वारा पौधों की संभाल का संकल्प लिया गया। और वार्डों में जाकर मरीज़ो का हाल–चाल भी पूछा गया।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. ७

संपादक – श्री पूनम सूरी

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 07 अक्टूबर 2012 से 13 अक्टूबर 2012

त्रिविध पवित्रता

● **डॉ. रामनाथ वेदालंकार**

पञ्चतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुः, त्रीष पवित्रा हृद्यन्तरा दधे।
विद्वान्त्स विश्वा भुवनाभि पश्यति, अवाजुष्टान् विध्यति कर्ते अव्रतान्।।

ऋग् ९.७३.८ऋषिः

ऋषिः **पवित्रः आङ्गिरसः ।** देवता **पवमानः सोमः ।** छन्दः **जगती ।**

● (**ऋतस्य**) सत्य का, (**गोपाः**) रक्षक, (**सुक्रतुः**) शुभ प्रज्ञानों और शुभ कर्मों वाला (सोम प्रभु), (**दभाय न**) हिंसा या उपेक्षा किये जाने योग्य नहीं है।, (**सः**) वह, (**हृदि अन्तः**) हृदय के अंदर, (**त्री पवित्रा**) तीन पवित्रों को–विचार, वचन और कर्म की पवित्रताओं को, (**आ दधे**) स्थापित करता है।, (**विद्वान्**) विद्वान्, (**सः**) वह, (**विश्वा**) समस्त, (**भुवना**) भूतों को, (**अभि पश्यति**) देखता है, (**अजुष्टान्**) अप्रिय, (**अव्रतान्**) व्रत–हीनों को, (**कर्ते**) अंध कूप में, (**विध्यति**) धकेलता है।

● 'सोम' परमात्मा 'ऋत' का संरक्षक और अनृत का घर्षक है। जहाँ भी वह सत्य को पाता है, उसे प्रश्रय देता है। वह 'सुक्रतु' है, शुभ प्रज्ञानों, शुभ विचारों, शुभ संकल्पों और शुभ कर्मों से युक्त है और अपने सम्पर्क में आनेवाले मानवों को भी वैसा ही बनाना चाहता है। परन्तु मानव को सत्य पथ का पथिक तथा 'सुक्रतु' वह तभी बना सकता है, जब मानव उसकी शरण में जाए, उसे आत्म–समर्पण करे, उसे अपने हृदय–मन्दिर में उपास्य देव के रूप में प्रतिष्ठित करे। यदि मानव जीवन में उसकी हिंसा या उपेक्षा ही करता रहेगा, तो उससे मिलनेवाली 'सत्य' और 'शुभक्रतु' की प्रेरणा से वह वंचित ही रहेगा। अतः 'पावनकर्ता' सोमप्रभु किसी से कभी भी उपेक्षणीय नहीं है।

'सोम' प्रभु जब अपने उपासक को पवित्र करना चाहता है, तब उसके हृदय में तीन 'पवित्रों' को स्थापित कर देता है। वे तीन हैं विचार की पवित्रता, वाणी की पवित्रता और कर्म की पवित्रता। मनुष्य के विचार ही वाणी और कर्म के रूप में प्रतिफलित हुआ करते हैं, अतः वाणी और कर्मों को पवित्र बनाने के लिए सर्वप्रथम विचारों की पवित्रता आवश्यक है। यदि किसी मनुष्य के विचार अपवित्र हैं, मन में वह पाप–चिंतना करता रहता है, तो वाणी या कर्म से पाप न भी करे, तो भी वेद–शास्त्र उसे पापी कहते हैं। अतः प्रभु प्रथम अपने कृपापात्र मनुष्य से मन को पवित्र करता है, फिर उस पवित्रता को क्रमशः वाणी और कर्म में भी प्रतिमूर्त कर देता है। 'सोम प्रभु' विद्वान् है, वह प्रत्येक प्राणी की गतिविधि को सूक्ष्मता के साथ देखता है। उसकी आँख से कुछ भी नहीं छिपता। अपनी विवेक–चक्षु से साधु और असाधु की पहचान कर लेता है। साधुओं को सत्कर्म में प्रोत्साहित करता है। जो व्रतहीन हैं, किसी भी शुभ–कर्म के संकल्प से रहित हैं, अतएव जो दुर्वृत्त, अप्रिय और असेव्य हैं, उन्हें दुर्गति के अन्धकूप में धकेलता है, दण्डित करता है। आओ, हम 'पवमान सोम' को अपने जीवन की पतवार सौंपकर मन, वचन और कर्म से पवित्र बनें।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

उपनिषदों का संदेश

● **महात्मा आनन्द स्वामी**

पिछले अंक में तीसरे दिन की कथा आरम्भ हुई। स्वामी जी ने पिछले दिन कही दृढ़ संकल्प और सुविचार की बात को पुनः दोहराया और कहा उत्तम संकल्प और विचार तीन स्थानों से मिलते हैं– माता से, समाज से और उत्तम पुस्तकों से । स्वामी जी ने कहा वर्तमान परिस्थितियों के संदर्भ में यह तीनों ही स्थान बिगड़ गये हैं। वेद–भगवान ने उत्तम संकल्पों तथा विचारों पर बल दिया है। यजुर्वेद में आए शिव संकल्पों के छः मन्त्रों का पाठ कर और अर्थ बताकर इस बात की पुष्टि की।
उपनिषद् ने कहा– ऋतुमयः पुरुषः। मनुष्य अपने विचारों का बना हुआ है। मन में उत्पन्न हुआ विचार स्वयं व्यक्ति पर ही नहीं सारे संसार पर प्रभाव डालता है। इसी प्रसंग में स्वामी जी ने एक वृद्धा और उसकी गठड़ी की कहानी सुनाई जो महात्मा हंसराज जी सुनाया करते थे।
अब आगे ....

इस प्रकार एक मनविचार दूसरे के मन के विचार पर प्रभाव डालता है। अतः भूलकर भी मन में खोटा विचार न आने दो। इस विचार का प्रभाव अपने पर ही नहीं, अपितु दूसरों पर भी होगा। किसी भी समय गिरने की, हारने की, पीछे हटने की बात मत सोचो। विजय की, ऊपर उठने की, आगे बढ़ने की बात सोचो–

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
पार ब्रह्म को पाइये, मन के ही प्रतीत।।

मन के क्षरा मनुष्य परब्रह्म को भी पा सकता है। इसमें बहुत बड़ी शक्ति है। अभी मैंने आपके सामने छः मन्त्र रखे न, उनमें से एक मन्त्र है–

येनेदं भूतं भुवनम्....

इस मन्त्र का भावार्थ बताते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने यजुर्वेद–भाष्य में लिखा है कि 'जिस व्यक्ति ने अपने चित्त को अर्थात् मन को योग के साधनों और उपसाधनों से सिद्ध कर लिया है वह भूत, भविष्यत् और वर्तमान की प्रत्येक घटना को जान लेता है।' योगदर्शन के विभूति पाद में ऐसी कितनी ही सिद्धियों का वर्णन मिलता है। अतः मन को सँभालो भाई। इसे बिखरने न दो। यह बहुत बड़ी शक्ति है, इसे नष्ट न होने दो।

उपनिषद् ने तो मन को ब्रह्म कह दिया है। इसलिए मैंने भी इसपर बहुत बल दिया। उपनिषद् का पहला सन्देश इस मन के सम्बन्ध में है इसमें दृढ़ संकल्प उत्पन्न करो तो सफलता मिलेगी अवश्य।

परन्तु आप कहेंगे–अच्छा बाबा! दृढ़ संकल्प पैदा कर लिया, उत्तम विचार बना लिया, परन्तु इसके परचात् क्या करें? इस दृढ़ संकल्प और उत्तम विचार से क्या करें? सुनिये। इसका उत्तर है उपनिषद का दूसरा सन्देश। उपनिषद् का पहला सन्देश है– **ऋतुमयः पुरुषः**– मनुष्य अपने विचारों का बना है।

दूसरा सन्देश है–**अन्नं बहु कुर्वीत**– बहुत–सा अन्न उत्पन्न करो। स्मरण रखो, उपनिषद् केवल आत्मा–परमात्मा की बातें नहीं करते; अपितु प्रत्येक उस बात का वर्णन करते हैं और उपदेश देते हैं जिससे मानव–जीवन सुखी हो सके। इसलिए उपनिष्द् ने कहा–**अन्नं बहु कुर्वीत तद् व्रतम्**–अन्न को बहुत इकट्ठा करे, ऐसा व्रत ले ले।

फिर आगे चलकर कहा–

न कञ्चन वसतौ प्रत्याचक्षीत तद् व्रतम्।
तस्माद् यया कया च विद्यया बह्वन्नं प्राप्नुयात्।।

'' बहुत अन्न उत्पन्न करे, ऐसा व्रत ले ले। फिर किसी भी अतिथि को अपने घर से खाली न जाने दे अथवा जो अतिथि घर में रहने आता है उसे मना न करे और इसलिए जिस किसी भी प्रकार से हो बहुत अन्न प्राप्त करे।''

परन्तु अन्न का अर्थ केवल 'अनाज' नहीं। अनाज तो एक अर्थ है इस शब्द का। इसके अतिरिक्त अन्य अर्थ भी हैं। प्यारी वस्तु, ऐसी वस्तु जिसकी हम इच्छा करते हैं। ऐसी वस्तु जो रक्षा करने वाली है, सुख देने वाली है। अन्न का अर्थ है धन, सम्पत्ति, वैभव, शक्ति और प्रत्येक वह पदार्थ जो सुख देने वाला है।

दूसरे शब्दों में उपनिषद् का सन्देश यह है कि सुख देनेवाली वस्तुओं को एकत्रित करो और थोड़ा नहीं, प्रभूत संग्रह करो।

स्मरण रखिये, उपनिषद् कपड़े उतारकर वन में चले जाने, सिर में राख डालकर धूनी रमा लेने की बात

नहीं कहता। वह कोरे वैराग्य की शिक्षा नहीं देता, अपितु कर्म करने की शिक्षा देता है। वह तो स्पष्ट शब्दों में कहता है– **कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत, समाः।** सौ वर्ष तक जीने की इच्छा कर। सौ वर्ष तक जीवित रह परन्तु किस प्रकार? क्या हाथ पर हाथ धरकर? निकम्मा बनकर? नहीं।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि।

कर्म करता हुआ जी, पुरुषार्थ करता हुआ, परिश्रम करता हुआ, पसीना बहाता हुआ जी। धन कमा, बहुत–सा धन कमा। परन्तु आप कहेंगे चलो छुट्टी हो गई। अब किसी दूसरी बात की आवश्यकता तो है नहीं। किसी प्रकार से धन कमाओ, यही जीवन का आदर्श है। परन्तु भूलो नहीं मेरे भाई! ऐतरेय उपनिषद् की भृगु वल्ली के जो शब्द मैंने अभी आपके समक्ष पढ़े–**अन्नं बहु कुर्वीत–** उसमें केवल यही आज्ञा नहीं कि बहुत धन इकठ्ठा कर, अपितु यह भी आज्ञा है कि अतिथि के लिए संग्रह कर। अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए संग्रह कर।

ईशोपनिषद् के पहले मन्त्र में इस बात को बहुत सुन्दरता से कहा गया है–

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा।

'भुञ्जीथा' शब्द आदेश का है। इसमें सम्मति नहीं प्रार्थना नहीं, अपितु आदेश है। भोग करो, प्रयोग करो। यह जो कुछ भी है संसार में तेरे लिए बनाया गया है, इसका प्रयोग कर। इससे मुख मोड़कर भूख–हड़ताल करके न बैठ जा।

'भुञ्जीथा' शब्द के रहस्य को समझिये। इसका अर्थ यह है कि जब आज्ञा दी जाती है कि 'प्रयोग कर' तब कोई प्रयोग करनेवाला भी चाहिये। यदि कोई प्रयोग करनेवाला ही नहीं, तब प्रयोग करने की आज्ञा किसको दी जायेगी? इसके साथ ही इसका यह अर्थ भी है कि जिनका प्रयोग हो सके ऐसी वस्तुओं का होना भी आवश्यक है। यदि प्रयोग होनेवाली वस्तुएँ ही न हों तो 'प्रयोग कर' ऐसा सुनननेवाला प्रयोग किसका करेगा? इस एक शब्द से ही ईश्वर ने कह दिया कि यह जो कुछ संसार में है, ये कारखाने, ये मिलें,ये क्षेत्र, ये उद्यान, ये पर्वत, ये नदियाँ, ये सागर, मैदान, सब तेरे लिए हैं। धन संगृहीत कर, कारखाने बना, व्यापार कर, राज्य बना, शासन की शक्ति प्राप्त कर, ये सब प्रयोग करने के लिए हैं। परन्तु करेगा कौन?

खाने को बहुत–सी वस्तुएँ पड़ी हों तो उन्हें खायेगा कौन? वही खायेगा जिसे भूख लगी हो। जिसे भूख ही नहीं, जिसकी पाचन–शक्ति बिगड़ गई हो वह खायेगा क्या?

एक बार मैं महात्मा हंसराज जी के साथ कलकता गया। एक बहुत बड़े करोड़पति सेठ के यहाँ ठहरे। भोजन का समय हुआ तो सेठ साहब के साथ हम भी भोजन के लिए बैठे। मेरे और महात्मा जी के लिए सुन्दर थालियों में कितनी ही वस्तुएँ भोजनार्थ आईं। परन्तु सेठ जी के लिए जो कुछ आया उसे देखकर मैं तो चकित रह गया। चाँदी के थाल में चाँदी की एक बड़ी कटोरी पड़ी थी। उसमें पीला– सा पानी था और उसके साथ केवल एक छोटा–सा शुष्क फुलका। सेठ जी उस फुलके को धीरे–धीरे खाते रहे। दूसरी कोई भी वस्तु उनके लिए आई नहीं, उन्होंने खाई नहीं।

भोजन समाप्त हो गया तो मैंने कहा, ''सेठ जी! एक बात मैं समझ नहीं पाया।''

वे बोले,''क्या?''

मैंने कहा, ''आपकी थाली चाँदी की थी, कटोरी भी चाँदी की, परन्तु उस थोड़े–से पीले पानी और एक शुष्क फुलके के अतिरिक्त आपने कुछ भी खाया नहीं। क्या आप वास्तविक भोजन कर चुके थे या अब करेंगे?''

सेठ साहब ने दीर्घ श्वास लेकर कहा, ''यही मेरा भोजन है। इसके अतिरिक्त और कुछ खाऊँ तो पचता नहीं।''

मैंने कहा, ''प्रातः दूध तो पीते होंगे?''

वे बोले, ''नहीं, दूध से पेट में वायु हो जाती है।''

मैंने कहा, ''दही तो खाते होंगे, उससे वायु नहीं होती?''

वे बोले, ''नहीं, मैंने कभी दही खाया नहीं। मेरे छोटे भाई ने एक बार खाया था, उसे जुकाम हो गया।''

मैंने कहा, ''लस्सी तो पीते होंगे?''

वे बोले, ''लस्सी तो कभी हमने ट्राई (ज्तल) नहीं की।''

मैंने कहा,''फल तो खाते होंगे?''

वे बोल, ''ना भाई! फल मुझे अनुकूल नहीं आते।''

मैंने कहा, ''बादाम, छुहारे, मुनक्का, किशमिश, ये तो खाते होंगे?''

वे बोले, ''ना, ये तो गर्म होते हैं। ''

मैंने कहा, ''पिस्ता?''

वे बोले, '' हे भगवान्! ये तो बहुत गर्म होते हैं।''

मैंने कहा, संख्यिा (जहर)?''

वे आश्चर्य से बोले,''संख्यिा किसलिए?''

मैंने कहा,''अब और तो कुछ खाने के लिए रहा नहीं।''

अब बताओ मेरे भाई! इस धन का क्या लाभ हुआ? स्वयं खा नहीं सकते, दूसरों को देते नहीं। ऐसा धन तो धन है नहीं। धन वह है कि यदि मेरे पास धन है तो देश के नवयुवकों को बुलाकर कहूँ, ''देखो, ये दूध और घी के मटके हैं, ये बादाम हैं, इन्हें पियो–खाओ। यह तेल का मटका है, इसे अपने शरीर पर मालिश करो। स्वस्थ और बलवान् बनो, और जब कोई शत्रु तुम्हारे देश पर आक्रमण करे तो उसकी हड्डियाँ चकनाचूर कर दो। लड़ो लड़ते– लड़ते मर जाओ, पीछे न हटो। '' यह है धन का ठीक उपयोग!

परन्तु ये लोग न तो स्वयं खाते हैं न दूसरों को खाने देते हैं,जोड़–जोड़कर मर जाते हैं। ऐसे लोग भोग नहीं कर सकते। भोग वह करता है जिसके शरीर में शक्ति है।

परन्तु शरीर में शक्ति आती है तीन बातों से। पहली शुद्ध आहार–सादा, सात्विक, शक्ति देनेवाला भोजन। घी खाओ, दूध पीओ, मक्खन खाओ।परन्तु अब तो दूध–घी की बात ही समाप्त हुई जाती है। सब लोग डालडा–ब्राण्ड बने जाते हैं। मुझसे एक व्यक्ति ने शारीरिक दुर्बलता की शिकायत की तो मैंने कहा,''अरे देखो, मैं 76 वर्ष का हो गया हूँ, अभी तक दौड़ता हूँ। पहाड़ों पर चढ़ जाता हूँ। मानसरावर हो आया। गंगोत्री तो कई बार गया; और तू 45 वर्ष की आयु में ही निर्बलता का रोना रोता है। ''उसने कहा, ''आपने असली घी खाया है स्वामीजी! और हम तो डालडा–ब्राण्ड हुए जाते हैं।'' इस प्रकार शरीर में शक्ति नहीं आयेगी। शरीर की शक्ति के लिए सबसे पहली और आवश्यक वस्तु है शुद्ध आहार।

तब दूसरी आवश्यक वस्तु है– निद्रा। ऐसी निद्रा। जिसमें कोई चिन्ता नहीं, कोई स्वप्न नहीं, जिसमें समय से पूर्व कोई जागता नहीं। परन्तु आजकल तो चिन्ताएँ ही मनुष्य का पीछा नहीं छोड़तीं। कितनी ही चिन्ताएँ हमने लगा रखी हैं। लड़कीवालों को लड़के की चिन्ता लड़ने वालों को लड़की की। शैशव में शिक्षा की चिन्ता रहती है। रहती है। शिक्षा मिल गई तो नौकरी की चिन्ता शुरु। नौकरी मिल गई तो यह चिन्ता कि ऊपर–नीचे से आय में वृद्धि किस प्रकार हो? इस प्रकार तो अच्छी नींद नहीं आ सकती मेरे भाई! निद्रा कहती है, ''मेरे पास आना है तो अकेले आओ, भीड़ लेकर न आओ।'' परन्तु हम तो चिन्ताओं का जुलूस लेकर उसके पास पहुँच जाते हैं। फिर वह आयेगी कैसे? इधर चारपाई पर लेटे अथवा भोजन में बैठे, उधर चिन्ताओं की घटाएँ उमड़–उमड़कर आने लगीं। ऐसी निद्रा तो निद्रा नहीं मेरे भाई ! निद्रा वह है जो अत्यन्त गाढ़ हो, जिसमें कोई स्वप्न न हो। कुछ व्यक्ति प्रातः उठते हैं तो कहते हैं, ''थका हुआ हूँ।'' कोई पूछे, तुम सोये–साये कैसे थक गए? क्या रात्रि में उठकर चलते रहे? दौड़ते रहे? तो सत्य बात यह है कि ये लोग वस्तुतः दौड़ते और चलते रहते हैं। ये स्वयं पड़े रहते हैं खाट पर, इनका मन दौड़ता रहता है। जाग्रत् अवस्था में शरीर की जो बैटरी खाली होती है, गाढ़ निद्रा में गए ही नहीं तो फिर इनकी बैटरी भरेगी किस प्रकार? और बैटरी नहीं भरेगी तो फिर थकावट तो होगी ही। विश्रान्ति कभी आयेगी नहीं। ऐसी निद्रा नहीं अपितु गाढ़ निद्रा शरीर की शक्ति को बढ़ाती है।

और तीसरी वस्तु है– ब्रह्मचर्य। जो खाया है, जो पिया है उससे शरीर में रस बनता है। यह रस अमृत है। इसे नष्ट न कर। इसे नष्ट करेगा तो स्मरण रख, इस लोक में या परलोक में कहीं भी तेरा कल्याण नहीं होगा।

इन तीनों बाातों से शरीर में शक्ति से ही संसार को भोगा जा सकता है; संसार की वस्तुओं का प्रयोग किया जा सकता है।

वेद भगवान जब **'भुञ्जीथा'** कहकर आदेश देता है तो इसका अर्थ भी यही है कि अपने अन्दर भोगने की शक्ति उत्पन्न कर फिर उसे भोग। यह संसार तेरे लिए बनाया है।

परन्तु **'भुञ्जीथा'** से पूर्व एक और शब्द है – **'त्यक्तेन भुञ्जीथा'**, अर्थात् भोग करो अवश्य, प्रयोग करो इन वस्तुओं का परन्तु त्याग से भोग करो। आप कहेंगे यह नया कौतुक हुआ। भोग भी करो, त्याग भी करो। दोनों बातें साथ–साथ कैसे हो सकती हैं? परन्तु सुनो भाई! त्यागपूर्वक भोग करने का अर्थ यह है कि भोग कर अवश्य, संसार की वस्तुओं का प्रयोग कर, परन्तु उनमें फँस न जा–

ज्यूँ जल भीतर पद्म है, जल में डूबे नाहीं।
ज्ञानी जग में रहत भी, लिप्तमान हो नाहीं।।

यह है त्यागपूर्वक भोगने का अर्थ। जल में रहो, परन्तु जल में डूब न जाओ। धन कमाओ, वस्तु–संग्रह करो, परन्तु त्याग के लिए ऐसा करो। त्याग का अर्थ है विभक्त करना, दान करना, बाँटना। संस्कृत में इसे वितरण कहते हैं। यह जो वैतरणी नदी की बात आप सुनते हैं न! जिसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उसे पार करके ही व्यक्ति स्वर्ग में पहुँचता है, यह क्या है? वही बाँटना, दे देना, दान देना। दान दिये बिना सुख प्राप्त होना असम्भव है।

– क्रमशः

हमारे उच्च पारिवारिक मूल्यों की एक झाँकी

● प्रो. ओम कुमार आर्य

विश्व के प्रायः सभी चिन्तक, विचारक, मनोवैज्ञानिक एवं समाज शास्त्रियों का मानना है कि संयुक्त परिवार जो आज लगभग बिखराव एवं विलुप्ति के कगार पर है, ऐसी संस्था है जिसमें व्यक्ति को सुखी, शांत व स्वस्थ विश्व के निर्माण हेतु आधारभूत आवश्यक शिक्षण, प्रशिक्षण स्वतः ही सहज एवं क्रियात्मक रूप में मिल जाता है। आज हमारे समाज में विभिन्न क्षेत्रों में जघन्य अपराधों की जो भयानक दुष्प्रवृत्ति और नकारात्मक मानसिकता दिन प्रतिदिन न केवल बढ़ती जा रही है, अपितु बहुत ही विकशल रूप धारण करती जा रही है, उसके पीछे अन्य कारण भी होंगे किंतु एक प्रमुख कारण यह भी है कि हम अपनी संयुक्त परिवार की प्रथा से दूर होते जा रहे हैं, हम अपनी पारिवारिक जड़ों से हटते और कटते जा रहे हैं, परिणाम सामने हैं, व्यक्ति शुष्क होता जा रहा,जीवन में नीरसता भरती जा रही है, हमारी परम्परायें, मर्यादायें सब नष्ट होती जा रही हैं, जड़ों से अलग हो जाने के ये स्वाभाविक दुष्परिणाम हैं, इनसे हम बच नही सकते।

किंतु यदि हम अपने अतीत को ओर लौटें अपने ग्रन्थ रत्नों को पढ़ें अपने पूर्वजों का अनुकरण करें, वैदिक–पथ का अनुगमन करें तो हम देखेंगे कि न केवल हमारे समाज का कायाकल्प होगा।, बल्कि सारा विश्व एक बहुत ही सुन्दर, सुरक्षित और जीने लायक आदर्श विश्व बन जायेगा। हमारे पारिवारिक मूल्य कितने ऊंचे थे, गौरवपूर्ण थे जिनके चलते हम विश्व में सर्वोपरि थे, जगद्‌गुरु थे, हमारी संस्कृति **'सा एव प्रथमा संस्कृति विश्ववारा'** कहलाती थी, हम विश्व के अन्य देशों को नैतिक, चारित्रिक मूल्यों की शिक्षा देते थे, देखिए 'मनुस्मृति' का यह कथन कि–

एतद् देशप्रसूतस्य सकाशाद् अग्रजन्मनाः
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

हमारी इस उच्चता, भव्यता और विश्व–व्यायी ख्याति का आधार जहाँ हमारी उदात्त वैदिक शिक्षायें थीं यथा–

'अनुव्रतः पितु पुत्रो मात्रा भवति संमनाः'
'सहृदय सामनस्यं अविद्वेषं कृणोमिवः'
'मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा'
'आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्'
'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' मनुर्भव

आदि–आदि वहीं 'रामायण' 'महाभारत' आदि मे भी जो हमारे उच्च वैयक्तिक, पारिवारिक सामाजिक एवं राष्ट्रीय मूल्य निरूपित हैं उनका भी योगदान कोई कम नहीं है। आइये देखें इनकी एक सुन्दर झलक और झांकी जो अंकित है 'महाभारत के पृष्ठों पर यक्ष युधिष्ठिर संवाद के उपाख्यान में।

इससे पूर्ववर्ती अध्याय में यक्ष–युधिष्ठिर का संवाद समाप्त हो चुका है। यक्ष ने प्रश्न पूछे, युधिष्ठिर ने उनका सटीक, सार्थक एवं सारगर्भित उत्तर दिया। यक्ष संतुष्ट हुये प्रसन्न भी और बोले कि युधिष्ठिर तुम अपने चारों भाइयों में से किसी एक को (एक से अधिक नहीं, मात्र एक) जीवित करवा सकते हो मैं उसको जीवित कर दूंगा। यह प्रश्न सुनने में तो सरल लगता है किंतु युधिष्ठिर तो धर्मज्ञ थे, विचारशील थे। वे सोचने लगे–हम पांचों भाइयों में कोई भेद नहीं, सभी अन्य चारों को समान स्नेह करते हैं, कौन किस माँ से है कभी विचार ही मन में नहीं आया। सभी सहोदर हैं, ऐसा आचारण सबका रहा है। किंतु यह भी तो सत्य है कि हम में से तीन कौन्तेय (कुंती के पुत्र) हैं, मैं युधिष्ठिर,भीम और अर्जुन, तथा दो माद्रेय (माद्री के पुत्र), नकुल और सहदेव। यहाँ युधिष्ठिर की वह ऊंची सोच देखिये जिससे हमारे परिवार अपनी विशेषताओं के लिये जाने जाते थे, हमारी अलग पहचान थी। हमारे व्यवहार में से उच्च मूल्य निहित थे जो अन्यत्र लगभग अकल्पनीय हैं। युधिष्ठिर सोच रहे थे, आगे एक श्लोक में कहा भी है कि माँ कुन्ती आज जीवित है, कल न भी रहे तो उसकी निशानी तो मैं (युधिष्ठिर) हूँ ही लेकिन माँ माद्री आज नहीं हैं, नकुल, सहदेव मृत पड़े है (वस्तुतः तो वे मूर्च्छा में थे) यदि मैं भीम अथवा अर्जुन को जीवित करवाता हूँ तो यह माँ माद्री के साथ अन्यास होगा, उनकी तो कोई निशानी ही कहीं नहीं बचेगी। वे भी तो हमारी माँ ही थी सोर भाई समाज हैं मेरे लिये किुतु माँ ही थी। सारे भाई समान हैं मेरे लिये किंतु माँ माद्री के लिये मुझे नकुल को जीवित करवाना है। इसलिये जब यक्ष ने कहा–

'तस्मात् त्वमेके भ्रातृणां यमिच्छसि स जीवतु 'हे युधिष्ठिर, अपने भाइयों में से जिस एक को तुम जीवित करवाना चाहो व जीवित हो जायेगा। तब युधिष्ठिर ने जो कहा था, उसका वह कथन हमारी गौरवमयी पारिवारिक परम्पराओं का एक दीप्तिमान् प्रतीक था, जिस पर हमें पर गर्व है, जिस पर हमारी संयुक्त परिवार–संस्था की यह भव्य इमारत समय को चुनौती देती हुई सदियों–सदियों तक अक्षुण्ण खड़ी रही है, किंतु आज हमारी उपेक्षा, मूर्खता और पाश्चात्यों के अंधानुकरण के चलते खतरा पैदा हो गया है कि कहीं इस भव्य भवन की नींव दरक न जाये, कहीं यह पूरी तरह धराशायी होकर इतिहास के पन्नों पर एक स्मृति भर शेष न रह जाये। युधिष्ठिर बोले

..... **महाबाहुर्नकुलो यक्ष जीवतु** हे यक्ष मेरा भाई महाबाहु नकुल जीवित हो जाये। यक्ष ने बनावटी आश्चर्य दिखाते हुये कहा था, युधिष्ठिर अपने प्रिय भाई भीम और अजेय धनुर्धर अर्जुन को छोड़कर तुम सौतेले भाई नकुल को जीवित करवाना चाहते हो? क्या तुम पागल हो गये हो। देखें यक्ष के वचनों को–

प्रियस्ते भीमसेनोऽयमर्जुनो वः परायणम्।
स कस्मान्नकुलं राजन् सापत्नं जीवमिच्छसि।।

अरे तुम सौतेले (**सापत्नं**) भाई नकुल को जीवित करवाना चाहते हो? युधिष्ठिर तुम्हारी अक्ल पर मुझे तरस आता है।

तब धीर गम्भीर युधिष्ठिर ने कहा था हे यक्ष, जहाँ तक बल का प्रश्न है, मेरे मे चारों भाई समानरुप में महाबली हैं। ये मेरी भुजायें हैं, इनमें से कोई एक भी मेरे साथ खड़ा हो तो हम दोनों भाई शेष सब योद्धाओं पर भारी पेड़ेंगे, हम अजेय हैं। मैं धर्म का त्याग नहीं कर सकता। धर्म, न्याय यही कहता है कि हमारी दो मातायें थीं, दोनों पुत्रवती रहें, कुन्ती भी और माद्री भी इसलिए **'स्वधर्मान्न चलिष्यामि नकुलो यक्ष जीवतु'** मैं अपने धर्म से विचलित नहीं होऊंगा, नकुल को ही जीवित देखना चाहता हूँ क्योंकि–

कुन्ती चैव तु माद्री च द्वे भार्ये तु पितुर्मम।
उभे सपुत्रे स्यातां वे इति मे धीयते मतिः।।
यथा कुन्ती तथा माद्री विशेषो नास्ति मे तयोः।
मातृभ्यां सममिच्छामि नकुलो यक्ष जीवतु।।

मेरे लिये जैसी मां कुन्ती, वैसी ही माँ माद्री है। दोनों माताओं के प्रति समान भाव रखना चाहता हूँ। इसलिए नकुल ही जीवित हो जाये।

ये थे हमारे उच्च पारिवारिक मूल्य। यह परम्परा सुदीर्घ काल से चली आई है महर्षि लिखते हैं कि इस देश का पतन महाभारत से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व ही प्रारम्भ हो गया था, महाभारत तो हमारे पतन की पराकाष्ठा थी। उस घोर पतन के काल में भी हमारी मर्यादाये किसी न किसी रूप में पूरी नहीं अंशतः ही सही जीवित थीं। आज के इस घोर पतन को क्या नाम दें महानाश? घोर दुर्भाग्य? पतन का अंतिम छोर? सगे भाइयों की तलवारें एक दूसरे की गर्दन पर तनी हैं सौतेलों की क्या कहें? खून के रिश्ते तार–तार हैं, सामाजिक रिश्तों को आज पूछता कौन है? आपसी प्यार खत्म, स्नेह समाप्त, विश्वास समाप्त? आज का युधिष्ठिर कुन्ती को किसी गिनती में नहीं गिनता माद्री तो उसकी लगती क्या है? चूंकि हमने अपने भव्य अतीत को भुला दिया, संबंधों की गरिमा को ध्वस्त कर दिया, इसलिये आज हमारे परिवार कलह, क्लेश के अड्डे बने हुये हैं। परिवार मानवीय गुणों की पौधशाला हुआ करते थे। हम बिना किसी औपचारिक शिक्षण–प्रशिक्षण के अपने पारिवारिक वातावरण में बड़े छोटे का यथायोग्य मान सम्मान, स्थिति के अनुसार अनुकूलन, त्याग भाव, सहनशीलता, धैर्य आदि गुण सीख लेते थे, धारण कर लेते थे। संयुक्त परिवार एक वट वृक्ष हुआ करता था जहाँ सबको आश्रय, प्यार, आपसी सहानुभूति मिला करती थी और ये ही उच्च गुण हमसे अपने समाज को मिलते थे। जब गुणों और मूल्यों का स्त्रोत ही सूखा पड़ा हो तो आगे प्रदान की प्रक्रिया तो अपने आप रुकेगी ही। इस वृद्ध भारत ने वे सौभाग्य के दिन भी देखे हैं जब इसके राम के लिए कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा तीनों में रंचमात्र भी भेद नहीं था, जब वासुदेव नंदलाल भी था, देवकी नन्दन और यशोदानन्दन दोनों एक थे, तब इस भारत भूमि का सौभाग्य सितारा सबसे उज्ज्वलतम था। किंतु आज यह भारत भूमि अपनी बदनसीबी पर खून के आंसू बहा रही है? कौन लौटाकर लायेगा इसका गौरवशाली अतीत? कौन पुनर्जीवित करेगा इसकी उच्च मर्यादायें इसकी परम्परायें, इसके उच्च वैयक्तिक , पारिवारिक मूल्य व आदर्श। उत्तर दो, आश्वस्त करो इस रोती बिलखती, सपूतों की जननी वृद्धा भारत मां को कि यह बीड़ा हम उठाते हैं। हम निभायेंगे अपने पुत्र धर्म को और उद्घोष करते हुये, संकल्प के साथ गाते हुये आगे बढ़ेंगे

''जीवन उच्च बनेगा उस दिन जब संस्कार हमारे सुधरेंगे
वेद,
शास्त्र, रामायण, महाभारतादि की सीख यही
राष्ट्र आदर्श बनेगा उस दिन जब परिवार हमारे सुधरेंगे

हम कृत संकल्प हैं वचन बद्ध हैं, पुनः अपने देश को गौरव और प्रतिष्ठा के उच्चासन पर आसीन करेंगे। हम राम है, भारत हैं कृष्ण हैं युधिष्ठिर हैं अपने परिवारों को बचायेंगे, देश को बचायेंगे, जग में वैदिक नाद गुँजायेंगे।

1607/7 जवाहर नगर
पटियाला चौक जीन्द (हरियाणा) –126102

सबका मालिक एक

● श्री हरिश्चन्द्र वर्मा

"एकं सद् विप्राबहुद्या वदन्ति'' (ऋग्वेद) ईश्वर एक ही है उस एक ही के अस्तित्व को ज्ञानी लोग बहुत नामों से पुकारते हैं। संसार में जितने आस्तिक जन हैं उस सर्वशक्तिमान को अपनी–अपनी भाषा में उसे अनेक नामों से पुकारते हैं। जैसे सूर्य सबके लिए आत्मा के समान है, उसकी किरणें किसी में भेदभाव नहीं देखती वह सभी को प्रकाशित करती हैं उसी प्रकार हम सभी को किसी में भेदभाव नहीं करना चाहिये, परस्पर सबको मिलकर रहना चाहिये और जैसे उसकी किरणें रक्षक बनकर सबकी रक्षा करती हैं वैसे ही मानव मात्र को स्वयं के साथ दूसरों की भी तन, मन, धन से रक्षा करनी चाहिए।

प्रश्न – उस सर्वव्यापी ईश्वर को किस नाम से पुकारा जाय?

उत्तर – संसार में जितने मत पंथ हैं वे सभी उसे कोई 'अल्ला', कोई 'ईश्वर' और कोई 'ब्रह्मा', 'विष्णु' और 'महेश्वर' के नाम से पुकारते हैं और कितने ही लोग श्री राम तथा श्री कृष्ण को ही ईश्वर मानते हैं। किन्तु उन सबसे हटकर आर्य लोग उस परमेश्वर को 'ओम्' नाम से पुकारते हैं, क्योंकि वैदिक ऋषियों ने मानव उत्पत्ति में जब परमात्मा का ध्यान किया लगे तब उन्हें जो ध्वनि श्रवण हुई वह प्राकृतिक कंप की मुख्य ध्वनि ओम् जैसी थी। उदाहरण के लिये दोनों कानों को बन्द कर देने पर जो गरगराता हुआ सुनाई देता है, यदि उस ध्वनि को ध्यान से एक मन से कुछ देर के लिये श्रवण किया जाय तो वह ओम् जैसा ही प्रतीत होगी। काँसे के एक बड़े कटोरे को हाथ पर रखकर एक काष्ठ की लम्बी डंडी को उसके चारों तरफ घुराने से उसके घर्षण से जो ध्वनि निकलती है, वह भी ओम् की उदगीथ जैसी होती है। अतः ओम् ध्वनि को किसी मनुष्य ने नहीं बनाया वह प्राकृतिक ईश्वरीय ध्वनि है, इसलिए उस सर्वशक्तिमान को ओम् नाम से पुकारा जाता है। जैसे ईश्वर का कोई लिंग नहीं, वैसे ही ओम् का भी कोई लिंग न हीं, पुलिंग में ओम्, स्त्रीलिंग में ओम् और नपुंसकलिंग में भी ओम् ही रहता है। ओम् का ओमी, ओमा या ओमन् नहीं होता।

कुरआन के इस्लाम में भी 'अल्लिफ, लाम, मीम, की व्याख्या करने पर 'ओम्' हो जाता है, यह तथ्य उनके इन तीन शब्दों में मौजूद है।

ओम् में सारी दैवी शक्तियों के नाम विद्यमान हैं। यह ओम् ही सत्य है, ओम् ही विद्या है। किसी भी देवी देवताओ के श्लोक पाठ के पहले सर्वप्रथम ओम् का नाम लिया जाता है। वैदिक सन्ध्योपासना एवं यज्ञादि में मंत्र का प्रारम्भ ओम् से किया जाता है।

ओ३म् सच्चिदानन्द स्वरूप है। सत्य दो प्रकार का है, आध्यात्मिक सत्य और भौतिक सत्य। भौतिक सत्य को आध्यात्मिक सत्य के द्वारा ही जाना जाता है।

''भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षमिर्यजत्राः। स्थिरै रंगैस्तुष्टुवांसस्तनूमिर्व्य शेमहि देवहितं यदायुः।।

ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेद के भाष्य में इस मंत्र का कितना सुन्दर स्पष्टीकरण किया है–'जो मनुष्य विद्वानों के साथ विद्वान् होकर कानों से सिर्फ सत्य वचनों को ही सुनें, जो कुछ भी सत्य पदार्थ हैं, संसार में, वह सब अपनी आँखों से देखें। असत्य को न देखें न सुनें। सत्य को देख सुनकर तो भद्रता पूर्ण व कल्याणमय जीवन व्यतित कर सकते हैं। स्वस्थ एवं सुदृढ़ अंगों वाले शरीर से पूर्ण आयु को सुख पूर्वक प्राप्त करें। जगदीश की सच्ची स्तुति करें, झुठी स्तुति की प्रशंसा न करें।''

सत्य, तप, दया और पवित्रता–धर्म के चार अंग हैं।

प्रश्न – सत्य और असत्य की परीक्षा कैसे होगी?

उत्तर – पाखण्डी लोग झूठ बोलकर पाखण्ड फैलाते और लोगों को ठगते रहते हैं। एक पाखण्डी ने अपने शिष्य को कान में मंत्र फूकते हुए कहा कि तुम्हारा नाक थोड़ा काट दिया जाय तो तुझे विष्णु भगवान का दर्शन हो जायेगा, शिष्य नाक कटवाने के लिए राजी हो गया। जब नाक काट दी गई तब दर्द से वह कूदने लगा, उस पाखण्डी के गुरु ने कहा, अब तो नाक कट गई तुम सबको बोलो कि हाँ हमें भगवान का दर्शन होने लगा है। देखा देखी जो लोग नाक कटवा लेते उनसे पहले वाला नाक कट्टा कह देता कि अब तो नाक कटवा ली इसलिये तुम भी बोलो कि भगवान का दर्शन हो रहा है। किन्तु एक सत्यवादी ने इसकी परीक्षा के लिये अपनी नाक कटवा ली तो उन लोगों का झूठ पकड़ा गया और उस सत्यवादी के चलते नाक कटवाने की प्रथा को रोक दिया गया और उस पाखण्डी को जिसने भगवान दर्शन का भ्रमजाल फैला रखा था दण्डित किया गया। जो अन्धा नहीं है और अन्धेपन का ढोंग रचता है, वह असत्य व्यवहार कर रहा है।

जैसे वैज्ञानिकजन परीक्षा यन्त्र से पदार्थों की परीक्षा करते हैं, उसी प्रकार विद्वान लोग विद्या और तर्क से सत्यासत्य का निर्णय करते हैं, जो तर्क की कसौटी पर खरा नहीं उतरता, जो सृष्टिक्रम से विपरीत बात करता है वह असत्य झूठ है। यदि कोई कहे कि सर्वव्यापक ईश्वर सातवें आसमान में रहता है, उसका जन्म अर्थात अवतार हुआ, और विना माता–पिता के सन्तान की उत्पति हुई, उसके सींग थे। वृक्षों से बाते हुईं, बबूल के पेड़ में काटे नहीं थे, आम के बीज से इमली पैदा हुई तो यह सब असत्य है।

असत्य अन्धकार है (अन्धकार ही शैतान है) और सत्य प्रकाश है (प्रकाश ही खुदा है) – सत्यरूपी प्रकाश के आगे असत्य रूपी अन्धकार नहीं टिक सकता। असत्य का बादल भले ही कुछ देर के लिए सत्य रुपी सूर्य को ढाँक ले पर वह सदा के लिए सूर्य रूपी सत्य को आच्छदित नहीं कर सकता। सत्य की विजय सदा से होता आयी है।

सत्य के लिए हर किसी को छोड़ा जा सकता है, पर हर किसी के लिए ''सत्य'' को नहीं। सत्य की परिभाषा व्यवहार में अनेक प्रकार की हो जाती है। यथा–माँ अपने बीमार बच्चे को कड़वी औषधि खिलाने के पूर्व कहती है कि यह मीठी है लो खालो। अतः उसके हित के लिए यदि झूठ बोलकर माँ औषधि खिलाती है तो उस झूठ से किसी को हानि नहीं होती, जिस झूठ से किसी की हानि नहीं होती उसे झूठ नहीं कहा जाता।

यदि दूसरे के हित के प्रति असत्य भी बोलना पड़े तो वह अधर्म नहीं, धर्म है। असाध्य रोगी को यदि डाक्टर झूठा विश्वास देकर उसके मनोबल को बढ़ाता है तो वह रोगी निर्भय हो जाता है और वह रोग से शीघ्र मुक्त हो सकता है। हित की भावना से किये गये कर्म को पाप नहीं कहा जाता। किन्तु एक आतताई अपने स्वार्थ के लिये दूसरे को छूरी से हत्या कर देता है तो हित की भावना नहीं पाप है। एक डाक्टर जो एक रोगी को रोग से मुक्त करने के लिए अचेन कर शरीर के अंगों को काटकर फिर सिलाई करता है और औषधि देकर उसे स्वस्थ करता है तो यह हित अर्थात् धर्म का काम करता है, और दूसरी छुरी अहित करने वाले के हाथ में जाती है तो वह उससे अपकार करता है, यह अहित कर्म महापाप है।

इसी प्रकार वैदिक ग्रन्थों में हिंसा और अहिंसा दोनों का विचार किया गया है। यथा–गुरु, बालक, वृद्ध, विद्वान् और निरपराध नारियों की हिंसा नहीं करनी चाहिए। किन्तु वह हिंसा नहीं अहिंसा है, ऐसे सैंकड़ों अत्याचारियों को मारने से यदि लाखों निरपराधियों की रक्षा हो रही हो तो वह हिंसा नहीं अहिंसा है। उदाहरण के लिए–इनफ्लूएंजा आदि के वाइरस के रोगाणुओं को यदि औषधि द्वारा नष्ट न किया जाए तो उससे अनेक लोग बीमार पड़ सकते हैं और कुछ ऐसे प्राणघातक रोगाणु होते हैं कि उन्हें और उन जैसे आतंकवादियों को मारने में कोई हिंसा नहीं होती।

युद्ध में हिंसा अहिंसा का विचार नहीं किया जाता। सन् 1025 में युद्ध मैदान में महमूद गज़नवी ने जब सैंकड़ों गौवों को आगे कर दिया तब उस समय पृथिवीराज ने धर्म के वशीभूत हो कर उन गौवों को नहीं मारा और उसी के सहारे महमूद गजनवी ने उन्हें बन्दी बना लिया। यदि उस समय पृथिवीराज उन गौवों की परवाह न कर 'गज़नवी को बन्दी बना लिया होता तो आज भारत में लाखों–लाखों गौवों की हत्या नहीं होती।

कभी–कभी जीवन रक्षा के लिए झूठ का भी सहारा लेना पड़ता है। व्यक्ति भूख से तंग आकर स्तेय का उतना बड़ा अपराधी नहीं होता जितना कि सम्पतिशील भ्रष्ट तरीकों से धनोपार्यन करने से अपराधी होता है। यदि सत्य बोलने से किसी निरपराधी को फाँसी की सजा होने वाली हो तो क्या आप सत्य बोलेंगे? सम्भवतः नहीं। अतः वहाँ असत्य बोलकर ही सत्यव्रत अर्थात् हितधर्म का पालन किया जाता है। (यथा–खून हरदेव ने नहीं किया है, जय देव ने किया है, किन्तु हरदेव को ही अपराधी बनाया जा रहा है। यहाँ असत्य को सत्य सावित किया गया है किंतु जिसे सत्य साबित किया गया है, वहाँ उसे असत्य बोलकर ही उस निरपराधी को बचाया जा सकता है।

लेख का शीर्षक था सबका मालिक एक है। श्री राम और श्री कृष्ण एकेश्वर की ही उपासना किया करते थे। बहुत सी देव देवियों की जो मूर्तियाँ बनाई गयी हैं वह सब ईश्वरीय शक्तियों के काल्पनिक रुप हैं जिन्हें शिल्पी कलाकारों ने बौद्ध और जैन काल से बनाना प्रारंभ किया था। महाभारत काल में किसी देव–देवी की मूर्ति नहीं बनायी जाती थी, केवल राजे महाराजे और पशु पक्षियों तथा अलंकारों के चित्र बनाये जाते थे।

आज तक जितने ऋषि हुए हैं जितने महात्मा साधक तथा सांई बाबा आदि हुए हैं वे सब एकेश्वर को ही अपने विश्वास के अनुसार उस अनेक नाम वाले का एक नाम से ध्यान और साधना करते थे। आज भी विद्वान योगाभ्यासी लोग करते हैं।

जैसे एक सद्पुरुष का नाम आनन्द है किन्तु उसे कोई गुरु, पिता, मित्रादि और जन्म दाता होने से उसे माता भी कहते हैं। इसी प्रकार ईश्वर का मौलिक नाम **'ओम प्रणव'** है, पर उसे अनेक

शेष पृष्ठ 6 पर ☞

महर्षि दयानन्द ने बताई कुछ आप बीती घटनाएँ

● खुशहाल चन्द्र आर्य

स्वामी दयानन्द चाँदपुर मेला देखने आये जो हर साल की भाँति इस साल भी 20 मार्च 1876 में भर रहा था। वहाँ स्वामी जी ने कई पादरियों व मौलवियों से कई विषयों पर प्रश्नोत्तर किये और उनको वैदिक धर्म से अवगत कराया। वे एक दिन अपने अत्यधिक प्रियजन श्री बक्शीराम जी व श्री इन्द्र मन जी के साथ बैठे थे तब उनको अपनी बीती घटनाएँ सुनाने लगे। उन्होंने कहा, जिन दिनों में मैं एकाकी घूमता था, उन दिनों में मेरा एक ऐसे स्थान पर जाना हुआ जहाँ सभी शाक्त बसते थे। उन्होंने मेरी बड़ी सेवा शुश्रूषा की। जब कई दिन के निवास के अनन्तर, मैं वहाँ से चलने लगा तो उन लोगों ने अत्याग्रह से मुझे ठहरा लिया। मैं समझता रहा कि वे भक्तिभाव से मुझे ठहराते हैं। ऐसे ही कुछ दिन बीत जाने पर उनका पर्व दिन आ गया। उस दिन सारे शाक्त, देवी के मन्दिर में एकत्र होकर गीत गाने लगे। उस दिन, उन्होंने मुझे भी कहा कि आज हमारे मन्दिर में महोत्सव है, आप वहाँ अवश्य चलिये। मैंने बहुत समझाया कि देवी के दर्शनों में मेरा निश्चय नहीं, परंतु वे एक न सुनते थे। पांव पकड़ कर कहने लगे कि यदि आज वर्ष के दिन आप मन्दिर में न पधारेंगे तो हमारा सारा उत्साह भंग हो जायेगा। आप मूर्ति को नमस्कार आदि कुछ भी न करना, परंतु हमारे लिए चले तो चलिये।

वह मन्दिर, नगर से बाहर एक उजाड़ स्थान में था। उनके विवश करने पर मुझे उस मन्दिर में जाना पड़ा। उस समय वहाँ, आँगन में होम हो रहा था, और लोग उत्सव मना रहे थे। मुझे वे दुर्गा की मूर्ति दिखलाने के बहाने भीतर ले गये। मैं सहज भाव से दुर्गा की प्रतिमा के सन्मुख जा खड़ा हुआ। मूर्ति के पास ही एक बलिष्ठ व्यक्ति नंगी तलवार लिए खड़ा था। वहाँ, वे लोग मुझे कहने लगे कि महात्मा जी! माता के आगे झुक कर नमस्कार अवश्य कीजिए। मैंने उनको स्पष्ट शब्दों में कहा कि मुझ से ऐसी आशा करना दुराशा मात्र है। मेरे वचनों से पुजारी चिढ़ गया और पास आकर, मेरी ग्रीवा को पकड़कर मेरे सिर को नीचा करने लगा। उसके इस बर्ताव से मैं चकित हो गया, परन्तु ज्यों ही मैंने दृष्टि फिराई तो क्या देखता हूँ कि वह खड्गधारी मेरे पास आ गया है और मेरी ग्रीवा पर खड्ग बरसाना ही चाहता है। इस दृश्य को देखकर मैं तुरन्त सावधान हो गया। मैंने झपट कर उसके हाथ से खड्ग छीन लिया। पुजारी तो मेरे बायें हाथ के एक ही चक्के से मन्दिर की दीवार से जा टकराया। मैं तलवार लिये मन्दिर के आंगन में आ गया। उस समय आंगन के सभी लोग कुल्हाड़ा, छुरी आदि शस्त्र लेकर मुझ पर टूट पड़े। द्वार की ओर देखा तो ताला लगा हुआ था। अपने आप को बलिदान से बचाने के लिए, मैं उछल कर दिवार पर चढ़ गया और परले पार कूदकर भाग निकला। उस स्थान के समीप ही एक वन था। दिन भर तो मैं वहाँ छुपा बैठा रहा, परन्तु जब रात का राज्य विस्तृत हो गया तो रातोंरात, ग्रामान्तर में जा पहुँचा। उस दिन से मैंने शाक्त लोगों का कभी भी विश्वास नहीं किया।

उस समय महाराज ने दोनों सज्जनों को यह भी सुनाया– ''एक बार गवर्नर जनरल महोदय से भी मुझे मिलने का अवसर मिला। मुझसे मिलकर उन्होंने अति प्रसन्नता प्रकट की और मेरे विचारों को बड़े सम्मान से सुना। मेरी विपत्तियों की कहानी सुनकर उन्होंने आश्चर्य और खेद, दोनों प्रकाशित किए। चलते समय मुझे कहने लगे, 'यदि आप चाहें तो आपकी रक्षा के लिए कुछ सैनिक नियत किये जाएं और भ्रमण में कष्ट न हों इसके लिये रेल के प्रथम दर्जे का आप को पास मिल जाये।' मैंने उनकी सहानुभूति और उदारता का धन्यवाद किया और कहा कि मैं आपकी इस सहायता को स्वीकार नहीं कर सकता। इसे स्वीकार करने पर लोग, मुझे राजनौकर अथवा ईसाई धर्म का नौकर समझने लग जायेंगे। उन्होंने कहा, ''क्या आप राजनौकरी को बुरा समझते हैं? इस पर मैंने उत्तर दिया कि–मैं सन्यासी हूँ और सच्ची सरकार परमेश्वर का–नौकर हो गया हूँ। उसी पर भरोसा रखता हूँ। इसलिए किसी मनुष्य की नौकरी करना मैं अपने लिये अच्छा नहीं समझता। मुझ से फिर पूछा गया, ''क्या आप वर्तमान सरकार को सच्ची नहीं मानते ?'' मैंने कहा कि सच्ची से मेरा तात्पर्य न परिवर्तन होने वाली से है, सो ऐसा एक ईश्वर ही है। उसका नियम अटल और न्याय निर्भ्रान्त है। मनुष्यों के न्याय और नियम तो समयानुसार बदलते ही रहते हैं। लाट साहब मेरी बातों से बहुत प्रसन्न हुए।'' यह था स्वामी जी का ईश्वर पर अटल विश्वास। चाँदपुर से स्वामी जी अति सम्मान पूर्वक विदा होकर शाहजहाँपुर से रेलगाड़ी में बैठ सहारनपुर आये और राम उद्यान में ठहरे। उसी उद्यान में उनके चित्ताकर्षक भाषण होते थे। यहाँ से स्वामी जी लुधियाना होते हुए लाहौर में सुशोभित हुए। प. मनफूल जी आदि सज्जनों ने रेलवे स्टेशन पर उनका स्वागत किया और अति सम्मान से लाकर श्रीमान् रक्षचन्द्र जी दाढ़ी वाला के उद्यान मे ठहराया। उस समय स्वामी जी के साथ इतने ग्रन्थ थे कि एक चौपहिया गाड़ी में, केवल वे ही लाद कर लाये गये।

स्वामी जी के पधारने का समाचार पाकर लाहौरवासी भद्रजन सत्संग के लिए उनके ठहरने के स्थान पर आने लगे। उनके उपदेशों का अत्युत्तम प्रभाव पड़ता था। महाराज का पहला व्याख्यान वैशाख सुदी 13 सम्बत् 1934 को बावली साहब में बड़े समारोह से कराया गया। सायंकाल के 6 बजे वेद विषय पर व्याख्यान आरम्भ होना था, परन्तु सभा स्थान नियत समय से बहुत ही पहले भरपूर हो गया था। सहस्रों मनुष्यों की भीड़ थी, दलों के दल उमड़े चले आते थे। महाराज ने अत्युत्तम रीति से विषय का वर्णन किया और श्रोता जन बड़े प्रभावित होकर घरों को लौटे।

लाहौर के उपदेशों में स्वामी जी ने प्रसंगानुसार आप बीती तीन घटनाएँ सुनाई। एक तो यह कि मैं एक बार गङ्गा–तीर पर विचरते हुए एक निबिड़ सघन वन में जा निकले। वहाँ मुझे सामने आता एक सिंह दृष्टिगोचर हुआ। मैं सीधा चलता हुआ जब उसके पास पहुँचा तो वह सिर्फ मेरी ओर देख, मुँह घुमाकर जगंल में चला गया।

दूसरी घटना यह थी–एक बार मैं एक पर्णकुटी में आसन रमाये बैठा था। उसके पास ही कुछ साधु रहते थे। वे अकारण ही मेरे द्वेषी बन गये। जब महाकाली निशा, आकाश की निविड़ कालिमा के साथ एकाएक हो रही थी, तो वे साधु मुझे मार मिटाने के लिए मेरी कुटिया पर आये और वध करने की विधि सोचने लगे। उनकी बातें मुझे सुनाई पड़ती थीं। थोड़ी देर तक परस्पर परामर्श करने के बाद, उन्होंने मेरी झोंपड़ी में आग लगा दी। जब घास फूस की कूटी को आग की लपटें लपेटकर भस्मीभूत करने लगी तो मैं छप्पर को उठाकर बाहर निकल आया।

तीसरी घटना यह है–'बनारस में एक दिन, जब मैं व्याख्यान दे रहा था, एक मनुष्य ने मुझे पान लाकर दिया। ज्यों ही मैंने उसे मुख में रख उसका रस चूसा तो मुझे ज्ञात हो गया कि इसमें विष मिला हुआ है। मैंने उसी समय वमन द्वारा उसे निकाल दिया।'

मेरा इन घटनाओं को लिखने का तात्पर्य यही है कि पाठकों को यह जानकारी हो जावे कि स्वामी जी का जीवन खतरे में रहता था, फिर भी वे कभी नहीं घबराये और कठिन से कठिन परिस्थियों में भी अपने उद्देश्य से विचलित नहीं हुए और निर्भीक रहते हुए वेद–प्रचार के कार्यों में लगे रहे। उन्हीं की त्याग व तपस्या का फल है कि हम आज वैदिक विचारों में सांस ले रहे हैं और अपने जीवन को धन्य बना रहे हैं। हमें उनके प्रति कृतज्ञ रहते हुए उनके बताए मार्ग पर चलते रहना चाहिए। यदि हम उनके बताए कार्यों में अपने स्वार्थवश विघ्न डालते हैं तो हमें कृतघ्नता का दोष लगेगा, इसलिए हमें आर्य समाज का कार्य निःस्वार्थ भाव से करते रहना चाहिए और जो परस्पर लड़ाई–झगड़े व मतभेद चल रहे हैं, उन्हें मिटा कर, सब आर्यों को एक जुट होकर वेद–प्रचार व जनहित के कार्यों को करते रहना चाहिए। तभी हम महर्षि के सच्चे अनुयायी बन कर उनसे स्वपनों को साकार कर सकेंगे।

820 महात्मा गान्धी रोड
कोलकाता–600006
फोनः 033–22123825

☞ पृष्ठ 5 का शेष

सबका मालिक एक

नामों से लोग पुकारते हैं। जब तक अमुक देवी–देवता मंत्र या श्लोक के पहले ओम् का उच्चारण नहीं किया जाता तब तक वह सार्थक नहीं होता। जैसे–**''ओम् या देवी सर्वभूतेषु शक्ति रुपेण संस्थिता, सर्वव्यापि जगत् जननी।''** और वही धन ऐश्वर्यवान् होने से श्रीलक्ष्मी है। तथा वही ''स्वरो विविधं ज्ञानं विद्यते यस्यां स्थितौ सा सरस्वती परमेश्वरः। जिसमें विविधज्ञान विज्ञान विद्यमान है उस ईश्वर का नाम सरस्वती है। सरस्वती उसी की शक्ति है जो मानव में मेधा की काम करती है। जिसके द्वारा किसी पाठ को कण्ठस्थ कर लिया जाता है उस शक्ति का नाम सरस्वती है। वेद मंत्र में परमात्मा के अनेक नाम–**''इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निं दिव्यः स सुपर्णो गुरुत्मान् एकं सद्‌विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।** (ऋ. 1,164,46)

विप्राः – विद्वान, परमात्मा के (एकं सद्) होने पर भी (बहुधा वदन्ति) बहुत प्रकार से अर्थात् बहुत नाम से (उसको) कहते हैं। (अथ, 3) और (सः) उसी को इद्रं मित्र, वरुण, अग्नि, (दिव्य) अलौकिक (सुपर्णः) शक्तिमुक्त (गुरुत्मान) और गौरवशाला (यमन्यायकारी और (मातरिश्रवानम्) वायु (आहुः) कहते हैं।

–मु पो. मुरारई
जिला वीर भूम
पं बंगाल– 731219

क्या आर्य समाज का स्वर्ण युग फिर आएगा

● अश्वनी कुमार पाठक

आर्य समाज एक प्रगतिशील संस्था है, जिसकी स्थापना महर्षि दयानंद ने प्रजातंत्र के आधार पर 1875 ईस्वी में की थी। इतने अल्प समय में इस संस्था का काफी विस्तार हुआ। इसका लक्ष्य वेद का आदेश **''कृण्वंतो विश्वमार्यम्''** अर्थात् संसार के लोगों को आर्य, श्रेष्ठ और सदाचारी बनाना है। इसके दस नियम मानव कल्याण के दस सूत्र हैं। छठे नियम में आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना कहा गया है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। इस तरह आर्य समाज एक राष्ट्रीय संस्था है।

आर्य समाज वेद को अपना धर्म ग्रंथ मानता है, जो ईश्वरीय ज्ञान है और संसार में सबसे पुराना है। इस समय हमारे देश में लगभग 5000 आर्य समाजें हैं तथा 2000 के लगभग विदेशों में जो वेद के प्रचार में लगी हैं। इनके अतिरिक्त 700 से ऊपर डी.ए.वी. स्कूल कॉलेज तथा जालंधर में डी.ए.वी. विश्वविद्यालय है, जो विद्यार्थियों को नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा भी दे रही हैं। इनके अतिरिक्त लड़के और लड़कियों के अनेक गुरुकुल भी हैं। कई अनाथालय तथा निशुल्क औषधालय भी कार्यरत हैं।

जिन लोगों की आयु इस समय 80 वर्ष अथवा अधिक है, उन्होंने आर्य समाज का स्वर्ण युग देखा है। जबकि सारे उत्तर भारत में आर्य समाज के प्रचार की धूम मची थी। बड़े-बड़े जुलूस निकलते थे। हजारों व्यक्ति आर्य समाज के उत्सवों में आते थे। महर्षि दयानन्द ने ही हमें बताया कि हमार प्राचीन नाम आर्य है और हिन्दू नाम किसी धर्म ग्रंथ में नहीं लिखा। वेद के अनुसार ईश्वर निराकार है, जिसकी कोई मूर्ति नहीं है। योग साधना से ही उसे प्राप्त किया जा सकता है। आर्य समाज ने ही लुप्त हो रही हवन यज्ञ की प्रथा को फिर से चालू किया तथा यज्ञ में मांस डालने का विरोध किया। उस समय लाहौर (अब पाकिस्तान में) आर्य समाज के प्रचार का बड़ा केन्द्र था।

आर्य समाज का आंदोलन एक सधारवादी आंदोलन था, जो कि बाल विवाह, सती प्रथा का विरोधी था तथा विधवा विवाह का समर्थक था तथा महिलाओं को शिक्षित कर के पुरुषों के बराबर अधिकार देने का समर्थक था। इसने मत मतांतरों की किसी भी अच्छी और सच्ची बात का विरोध नहीं किया, परंतु पाखण्ड और अन्धविश्वास का विरोध किया।

महर्षि दयानन्द से प्रभावित होकर उस समय लेखराम, गुरुदत्त, हंसराज, लाला लाजपत राय, मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानंद) जैसे कई युवक आर्य समाज के प्रचार में जुट गए थे।

शहीद भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव, रामप्रसाद बिस्मिल, सोहन लाल पाठक, चंद्र शेखर आजाद जैसे कई युवक महर्षि दयानंद से प्रभावित होकर देश की स्वतंत्रता के लिए बलिदान हो गये।

आर्य समाज के विद्वानों-पण्डित रामचन्द्र देहलवी, पंडित शांति प्रकाश, पंडित मनसा राय, वैदिक तोप, महात्मा आनंद स्वामी, महाशय कृष्ण इत्यादि ने वेद प्रचार की धूम मचा रखी थी तथा सब मत मतान्तर के लोगों अर्थात् विद्वानों को शास्त्रार्थ में हराकर विजय प्राप्त की थी। इनके प्रचार से स्थान-स्थान पर आर्य समाजें स्थापित हो रही थीं। परंतु अब कोई भी विद्वान मुकाबले के लिए आगे नहीं आ रहा। अब टीवी चैनलों पर मुकाबला होना चाहिए, तभी सत्य असत्य का निर्णय होगा।

आर्य समाज ने महात्मा गांधी से भी पहले अछूतोद्धार का कार्य आरंभ कर दिया था और उन्हें दलित नाम दिया था। कई दलितों को विद्वान बनाकर आर्य समाजों में पुरोहित रखा गया।

महात्मा गाँधी के सत्याग्रह में भी अधिकांश लोग आर्य समाजी थे-ऐसा कांग्रेस के इतिहास में वर्णन किया गया है।

हमारे देश पर लगभग 900 वर्ष तक विदेशी शासन रहा। उस समय लाखों लोगों का धर्म परिवर्तन किया गया मंदिरों को लूटा गया, मूर्तियां तोड़ी गईं तथा उन जगहों पर मस्जिदों बनाई गईं। हिन्दू लोग किसी को अपने धर्म में शामिल नहीं करते थे। सबसे पहले इस युग में महर्षि दयानंद ने मोहम्मद उमर नाम के एक व्यक्ति को शुद्ध करके वैदिक धर्मी बनाया। उसके बाद आर्य समाज के नेताओं ने शुद्धि का आंदोलन शुरु किया, जो अब तक चल रहा है।

1939 में हैदराबाद के निजाम ने आर्य समाज के प्रचार पर पाबन्दी लगा दी, इसलिए आर्य समाज को वहां जाकर सत्याग्रह करना पड़ा, जिसमें कई हजार व्यक्तियों ने भाग लिया, दो दर्जन के लगभग लोग निजाम की जेलों में शहीद हो गए। आखिर निजाम को आर्य समाज के प्रचार पर लगी पाबंदी हटानी पड़ी।

बड़ी कुर्बानियों के बाद हमारा देश 15.08.1947 को स्वतंत्र हो गया, पर भारत और पाकिस्तान दो देशों में विभाजित हो गया। लाखों व्यक्ति दोनों तरफ परस्पर झगड़ों मे मारे गए और अरबों रूपए की संपत्ति आर्य हिन्दुओं की पाकिस्तान में रह गई, परंतु लोगों ने हिम्मत नहीं हारी और शरणार्थी बनकर आर्य लोगों ने नई आर्य समाजें स्थापित कर दीं।

परंतु अब कुछ समय से आर्य समाज का प्रचार घट गया है। संन्यासी और विद्वान कम हो गए हैं, इसलिए पाखंड और अंधविश्वास बढ़ रहा है। मीडिया में आर्य समाज का नाम तक नहीं है। साप्ताहिक सत्संग में हाजरी कम हो रही है। कुछ स्वार्थी लोग चुनाव संबंधी मुकदमेबाजी कर रहे हैं, जिससे लाखों रूपया व्यर्थ में बरबाद हो रहा है। सर्वोच्च संगठन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा छिन्न-भिन्न हो चुकी है तथा प्रदेशों में भी कई-कई प्रतिनिधि संभाएं बन गई हैं। इसलिए आर्य समाज की छवि धूमिल हो रही है। पुराने सदस्य अब दिवंगत हो रहे हैं और नए बन नहीं रहे हैं। इस तरह आर्यसमाज कब तक चलेगा। हमारा कोई टी.वी. चैनल भी नहीं है।

महर्षि दयानंद ने कहा था कि आर्य समाज कोई नया मत अथवा सम्प्रदाय नहीं है। मेरा धर्म तो सत्य सनातन वैदिक धर्म है, जो ब्रह्मा से जैमिनी तक चलता आया है। इसी धर्म के प्रचार के लिए मैंने आर्य समाज बनाया है। उन्होंने 31.12.1880 को आर्य समाज मुलतान के मंत्री मास्टर दयाराम वर्मा को यह पत्र लिखा था कि आर्य समाज के लोग जनगणना में धर्म के खाने में वैदिक धर्म और जाति के खाने में आर्य लिखाएं, परंतु आर्य समाज के नेताओं ने इस पर ध्यान नहीं दिया और अपने हिन्दू लिखते-लिखाते आ रहे हैं, इसलिए आर्य समाज की वर्तमान दशा पर विचार करने के लिए किसी विद्वान अथवा महान संन्यासी द्वारा एक चिंतन सम्मेलन बुलाने की आवश्यकता है, जिसमें विचार करके उचित निर्णय लिये जाएं।

धर्म अथवा मत के मानने वाले लोग अपने-अपने धर्म के बड़े पक्के होते हैं और धर्म के सिद्धातों पर चलते हैं। जिस तरह मुसलमान का बेटा मुसलमान, ईसाई का ईसाई होता है, ऐसे ही आर्यों की संतान भी अपने आपको वैदिक धर्मी मानेगी। जबकि आर्य समाज की संतान आवश्यक नहीं कि आर्य समाजी ही हो, क्योंकि आर्य समाज तो कोई धर्म नहीं है, इसलिए आर्य समाजियों की संख्या घट रही है। संसार में वैदिक धर्म की स्थापना करना अब आवश्यक है। आर्य नेता सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन बुलाकर यह घोषणा करें कि सब आर्य जन सर्वत्र अपना धर्म वैदिक ही लिखें-लिखाएं तभी आर्य समाज की उन्नति होगी। पाखंडी साधुओं और बाबाओं को सावधान करने में भी आर्य समाज को आगे आने की आवश्यकता है। मूर्तियां किसी की रक्षा की करतीं। मंदिरों में आए दिन चोरियां होती रहती हैं।

बाल विवाह तथा कन्या भ्रूण हत्या जैसी सामाजिक बुराइयां दूर करने में भी आर्य समाज को अग्रसर होना चाहिए। हम लोग हिन्दुओं से अलग नहीं हैं, परंतु हमारे धर्म का नाम वैदिक धर्म है और यह नहीं भूलना चाहिए। मैं 10 वर्ष से यह प्रचार कर रहा हूं इसलिए वेद प्रचार की भी योजना बनाई जाए तथा सार्वदेशिक सभा की मुकदमेबाजी समाप्त कराने के लिए इसका चुनाव हाईकोर्ट की मंजूरी से कराया जाए। उसके बाद सार्वदेशिक सभा तथा प्रदेशों की सभाओं को ट्रस्ट की तरह चलाया जाए। मुकद्दमे करने वाले लोग आर्य समाज से पृथक् हो जाएं, तभी कल्याण होगा।

आर्य समाज द्वारा विवाह समारोह सादगी से किये जाने आवश्यक हैं। हमारे देश में महिलाएं सुरक्षित नहीं हैं, इसलिए इनसे छेड़खानी और बलात्कार के केस बढ़ रहे हैं। दोषियों को कठोर दंड दिया जाना चाहिए। दहेज के लिए भी महिलाओं को प्रताड़ित किया जा रहा है। कन्या भ्रूण हत्याएं भी बहुत हो रही हैं। आर्य समाज को इस बारे में आंदोलन करना चाहिए। बाल विवाह रोकने के लिए भी सरकार से सख्त कानून बनवाना चाहिए। आर्य समाज के अधिकारियों को अपने मंदिरों से बाहर निकल कर वेद प्रचार करना चाहिए, तभी जनता आर्य समाज से जुड़ेगी। सब मनुष्यों को अपने भाग्यानुसार एक ईश्वर की व्यवस्था से सुख-दुख, हानि-लाभ इत्यादि प्राप्त होते हैं, इसलिए शुभ कर्म ही करने चाहिएं।

बी-4/256 सी, केशवपुरम,
दिल्ली-110 035

हम आत्म समर्पण करना तो सीखें

● पं० उम्मेद सिंह विशारद

तयामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि, ऋतं वदिष्यामि, सत्यं वदिष्यामि, तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु माम। अवतु वक्तारम्—।।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का लेखन उक्त तैत्तिरीय आरण्यक के वचन से प्रारम्भ किया है। इसका अर्थ यह है कि मैं जो बात जैसी होगी वैसी ही कहूँगा, बिल्कुल सत्य कहूँगा, परन्तु फिर भी ईश्वर मेरी रक्षा करे। जो बात जैसी है वैसे ही कोई कहेगा तो स्वयं सत्य उसकी रक्षा करेगा फिर ईश्वर को बीच में लाने की क्या आवश्यकता है? इसमें गूढ़ रहस्य छिपा है। असत्य बोलने वाला कहे भगवान मेरी रक्षा करो समझ आता है, किन्तु सत्य बोलने वाला क्यों कहे?

मानव जो देखता सुनता है वह उसके ज्ञानाजर्न के आधार पर निर्णय करता है। वह उसके लिये तो सत्य हो सकता है, किन्तु क्या ईश्वरीय विधान में भी वह सत्य है? मनुष्य अपने सांसारिक ज्ञान को केन्द्रित होकर कहेगा। किन्तु सत्य की परख विशाल सृष्टि के दृष्टिकोण से ही हो सकेगी।

इसलिए श्रुति ने कहा कि मैं अपने से सत्य कहता हूँ और यथार्थ कहता हूँ, किन्तु ईश्वर की दृष्टि में असत्य हो सकता है। ऐसी परिस्थिति में मैं अपने को ईश्वर के प्रति समर्पित करता हूँ, क्योंकि मेरी दृष्टि मुझसे ही बंधी है और उसकी दृष्टि सबसे बंधी है।

आत्म समपर्ण के लिये तीव्र इच्छा शक्ति व समर्पण के प्रकार

सर्वप्रथम सत्य की बांह पकड़ने के लिये तीव्र इच्छा शक्ति व पुरूषार्थ का होना अनिवार्य है। यदि बुरा आदमी बुरे काम के फल से बचने की ईश्वर से प्रार्थना करे, तो ठीक है– किन्तु यहाँ तो कहा गया है कि भले ही मैंने सत्कर्म किया हो, किन्तु हो सकता है ईश्वर की दृष्टि में वो असत्य हो, तभी प्रार्थना की गयी कि मैं कर्म करके आपकी शरण में आता हूँ, आपके चरणों में अपने को समर्पित करता हूँ क्योंकि मैं कर्म करने में स्वतन्त्र हूँ और फल भोगने में परतंत्र आपके आधीन हूँ।

आइए आत्मसमर्पण के प्रकारों पर विचार करें

1. मनुष्य के अन्दर सत्य की ओर चलने की तीव्र इच्छा शक्ति होनी अनिवार्य है।
2. उससे भी बड़ी इच्छाशक्ति ईश्वरीय वाणी वेद, वैदिक धर्म, संस्कार, संस्कृति, सभ्यता को अपनाना है।
3. उससे भी बड़ी इच्छाशक्ति, नियमित सन्ध्या, यज्ञ, आर्षग्रन्थों का स्वाध्याय व आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संगों में सपरिवार जाना है।
4. उससे भी बड़ी इच्छाशक्ति, चाहे वह सदस्य हो, पदाधिकारी हो, या प्रचारक हो उसको समर्पित भाव व निःस्वार्थ भाव से अपने मिशन की सेवा करना है।
5. उससे भी बड़ी इच्छाशक्ति सत्य के प्रचार के लिए जिन महापुरूषों ने अपना जीवन बलिदान किये है, उनके जीवन चरित्र को पढ़कर प्रेरणा लेना और उनके कार्य को आगे बढ़ाना है।
6. उससे भी बड़ी इच्छाशक्ति सत्संग भवन व यज्ञशाला का निर्माण कराना है।
7. उससे भी बड़ी इच्छाशक्ति है वैदिक धर्म के लिए चार दीवारों से बाहर निकलकर स्थान–स्थान पर धर्मज्ञान जनता को देना।
8. और सबसे बड़ी इच्छाशक्ति ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण करके सत्य के लिए अपने प्राणों तक को भी बलिदान करना है।

यदि उक्त आत्म समर्पण की क्रियात्मक भावनाऐं हमारे जीवन में आ जायें तो आर्य समाज सम्पूर्ण विश्व में छा जायेगा। सम्पूर्ण संसार के मनुष्य सत्य की ओर टकटकी लगाये हैं किन्तु अपने–अपने मतों के पूर्वाग्रहों से अशक्त हो रहे हैं। केवल आर्य समाज ही सम्पूर्ण मानव को सत्य की ओर ले जा सकता है और सभी मत सम्प्रदाय अधिकांश आर्य समाज के नियमों अर्थात वैदिक सत्य को स्वीकारने लगे हैं।

प्रभु के प्रति आत्मसमर्पण करने वाला निश्चिन्त हो जाता है।

आत्मसमपर्ण जीवन का नियम व सिद्धान्त है। हर व्यक्ति एक दूसरे की अपेक्षा छोटा है, एक दूसरे का सहारा लेना पड़ता है। इसलिए अपने पुरुषार्थ से कर्म करते रहें, और सत्य की डोर को न छोड़ें। पुनः अपना सारा बोझ ईश्वर के ऊपर छोड़ने से ईश्वर सारा बोझ ले लेते हैं। कवि ने ठीक कहा है।

जब दांत न थे दूध दियो, जब दूध दियो तब अन्न न दै हैं।

जल में थल में पशु–पच्छिन की जो सुध लेत सो तो कोहू लै हैं।।

आत्म समपर्ण का केवल एक ही उपाय है कि जो कुछ भी हम करें, उसको समर्पित होकर करें। और अपने को बीच में से निकाल देवें। तब सारा कार्य करते हुए भी चिन्ता बीच से निकाल जायेगी।

आत्म समर्पण केवल आस्तिक ही कर सकता है

सत्यपथ गामी, सत्यवादी, पुरूषार्थी व्यक्ति के आत्मा में सदैव उत्साह बना रहता है और उसकी इच्छा मजबूत रहती है, उसका ईश्वर पर अटूट विश्वास होता है और वह प्रत्येक कृत्य को ईश्वर के प्रति समर्पित करता है। जिन महापुरूषों ने सत्य मार्ग पर चल कर संसार को सत्य की राह दिखाई है उनका प्रत्येक कृत्य ईश्वर के प्रति समर्पित था।

मैं को मिटा देना ही आत्म समर्पण है।

जब तक मानव के अन्दर "अहंकार" – मैं हूँ, का भाव बना रहता है, वह प्रत्येक सफलता का श्रेय अपने को देता है, और संसार को अपना है समझता रहता है, तब तक ईश्वर के प्रति समपर्ण की भावना का उदय नहीं होता। प्रत्येक अणु व प्रत्येक पानी की बूंद जब तक सोचते हैं कि हम भी कुछ हैं तब तक उनका मूल्य कुछ नहीं है। जब अणु अपने को विशाल पृथ्वी का हिस्सा बनाता है और पानी की बूँद समुद्र में जा डूबती है, तभी वह विशाल पृथ्वी व समुद्र का हिस्सा बन जाते हैं। इसी प्रकार दिये की लौ जब तक दिये के साथ बनी रहती है तो वह छोटी सी बत्ती का प्रकाश कहलाती है किन्तु जब वह सूर्य से मिल जाती है तो अखिल ब्रह्माण्ड को प्रकाश देने लगती है। आत्मा जब परमात्मा के प्रति अपने को समर्पित कर देता है, जब कह उठता है, हे ईश्वर यह मेरी इच्छा नहीं तेरी इच्छा है तब वह आत्मा ईश्वर के प्रेम में, उसी की गोद में जा पहुंचता है।

आर्य समाज के विकास के लिए आत्म समर्पण की आवश्यकता है

महर्षि दयानन्द के बाद आर्य समाज का इतिहास देखने से प्रतीत होता है कि ऋषि के दिवंगत होने की अर्ध शताब्दी तक तो सम्पूर्ण आर्यों में आर्य समाज व उसके सिद्धान्तों के प्रति आत्म समपर्ण की भावना थी, कोई उद्देश्य था, लक्ष्य था, मर मिटने की भावना थी। आर्य समाज सम्पूर्ण विश्व में अपनी छवि बना सका था। उसके पश्चात् इच्छाशक्ति व आत्म समर्पण की भावना न होने से शिथिलता आने लगी है। आज हम आर्यों को अपनी इच्छा शक्ति व आत्म समर्पण को जगाना होगा। आर्यो! सारा संसार हमारी ओर देख रहा है कि कब आर्य आगे आयें और हम इनमें मिलकर सच्ची शान्ति प्राप्त करें। आओ हम जागें व जगाऐं। ईश्वर हम आर्यों को शक्ति व बुद्धि देवे।

गढ़निवास मोहकमपुर,
देहरादून, उत्तराखंड

सद्विचारों के प्रचारक बनो

● टीकाराम आर्य

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्योगन्धर्वः केतपूः केतं न पुनातु वाचस्पति न स्वदतु ।। यजु.–30.1

उपरोक्त मंत्र में भगवान से निम्न चार प्रार्थनायें की गई हैं।

1. **यज्ञं प्रसुव** :– प्रत्येक मानव के हृदय में शुभ कर्म करने की प्रेरणाकर।
2. **यज्ञपतिं प्रसुव** :– जो शुभ कर्म करने वाले हैं उनके उत्साह को बढ़ाओ।
3. **दिव्यः गन्धर्व** :– दिव्य वाणी को धारण करने वाले और केतपूः :– जिन्होंने ज्ञान द्वारा अपने आपको पवित्र किया है। नः केतं पुनातु त्र हम भूले भटकों को मार्ग बतावें।
4. वाचस्पतिः न वाचं स्वदतुत्र वाणी के स्वामी हमारी वाणी को माधुर्य से युक्त बनावें। मंत्र में वर्णित इन चार प्रार्थनाओं का आशय निकला कि संसार को स्वर्ग बनाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के चार कर्तव्य हैं।

पहला यह कि प्रत्येक व्यक्ति को उच्च एवं पवित्र विचारों वाला होकर उनका प्रचार करना चाहिए दूसरा यह कि अच्छे काम करने वाले पवित्र व्यक्तियों की प्रशंसा करके उनका उत्साह बढ़ाना चाहिए। तीसरा यह है कि जो–जो हम जानते जावें उन पर पूरी आस्था और विश्वास से आचरण कर देना चाहिए। चौथा यह है कि अनुभवशील व्यक्तियों से मधुर भाषा की शिक्षा ग्रहण करके हमें इस प्रकार की बातें करनी चाहिएँ कि पीड़ित व्यक्ति भी सुख शान्ति का अनुभव करें।

अब एक एक बात पर विस्तार से विचार करते हैं। इस समस्त विश्व में बुराई बढ़ रही है और अच्छाई कम हो रही है। अपने प्राचीन इतिहास रामायण बालकाण्ड में वर्णित बात पर प्रत्येक व्यक्ति को विश्वास भी नहीं हो सकता कि यह बात सत्य है। कि

क्वचिन्न राजा तत्रासीत न् दन्डो न च दाण्डिकः।
धर्मेणेव प्रजा सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्।।

उस समय न कोई राजा था न कोई कानून था और न कोई व्यवस्थापक। सब प्रजा के लोग अपने कर्तव्य को जानकर एक दूसरे की रक्षा करते थे।

शुचीनामेकबुध्दीनां सवेषां सम्प्रजानताम्।
नासीत् पुरे वा राष्ट्रे वा मृषावादि नरः क्वचित्।।

सब उच्च कोटि के ज्ञानी, राष्ट्रीय कार्यों में एक मत् से चलाने वाले थे

शेष पृष्ठ 9 पर ☞

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

● सुशील वर्मा

आर्यावर्त्त में रहने वाले सभी आर्य नाम से सम्बोधित किए जाते रहे हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम हों, चाहे योगीराजकृष्ण ये सभी आर्य पुत्र कहलवाए। टी. वी. सीरियल रामायण में इसी शब्द से सम्बोधन किया गया। परन्तु फिर भी आज भारत में रहने वाले आर्यों को हिन्दु, इंण्डियन अथवा अन्य साम्प्रदायिक नामों से पुकारा जाता है। जब कि न तो हम इण्डियन थे न ही हिन्दु, इतिहास इसका प्रमाण है। इन सबसे ऊपर जब हम वेद के वचनानुसार **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** का उद्घोष करते हैं तो समझा जाता है कि ये आर्य समाजी ही इसका प्रचार कर रहे हैं और हम सबको आर्य समाजी ही बनाना चाहते हैं। अन्य धर्मों की बात तो छोड़ो हिन्दु समाज ही इसका विरोध करता है और इस आर्य शब्द को स्वीकार नहीं कर पाता।

वेद हमारे सर्वमान्य एवं विश्वज्ञान की प्रथम आधारशिला स्वीकृत की गये हैं विश्व की सस्थाओं ने यह स्वीकार किया कि ऋग्वेद विश्व का सर्वप्रथम पुस्तक है। उसी वेद का यह मन्त्र आदेश दे रहा है।

ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वामार्यम्। अपघ्नन्तो अराव्णः। ऋग् 9/63/5

अर्थात हे अप्तुरः = सत्कर्मो में निपुण सज्जनो। इन्द्रम् = परमैश्वर्यशालियों को, वर्धन्तः = बढ़ाते हुए, अराव्णः = पापियों का, अपघनन्तः = नाश करते हुए विश्वम् = सम्पूर्ण संसार को आर्यम् = आर्य श्रेष्ठ, पुरुष, कृष्वन्तः = बनाओ।

जब तक विश्व के लोग वैदिक शिक्षाओं को अपने आचरण में लाकर आर्य नहीं बनते, संसार में ईर्ष्या, द्वेष, अशान्ति, लोभ का ताण्डव होता ही रहेगा और इन सबके उन्मूलन के लिए उत्कृष्ट उपदेश, निर्मल एवं पवित्र ज्ञान और उदारता ही एक मात्र साधन हैं। वेद की विशेषता यही रही है कि उसने हमेशा जनहित की बात की। वेद यह नहीं कहता कि हम हिन्दु, मुसलमान और ईसाई बनें अपितु अच्छे मानव बने – **"मनुर्भव"**, आर्य बनें। आर्य का अभिप्रायः ही श्रेष्ठ पुरुष है आर्य ईश्वर पुत्रः। वह पिता का अनुव्रती होकर प्राणिमात्र के हित को अपने समक्ष रखता है। **"अनुव्रतः पितुः पुत्रो"** (अथर्व 3/30/2। उसका कार्य क्षेत्र अपने तक ही सीमित नहीं अपितु **"उदारचरितानां तु बसुधैव कुटुम्बकम्"** (पञ्चतंत्र) सारा विश्व ही उसका अपना है। वेद कहता है – **"अहं भूमिमददाम् आर्याय"** (ऋग् 4/26/2) मैं यह पृथिवी आर्यो को देता हूँ। वस्तुतः सुख और शान्ति और समृद्धि के लिए इस भूमि पर आर्यों का आधिपत्य होना चाहिए जो जीव मात्र के सुख दुःख को अपना सुख दुःख समझकर व्यवहार करें। उसका आचार **'आत्मवत् सर्वेभूतेषू'** के अनुरूप ही होता है।

"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का परिणाम यह रहा कि जब तक आर्यों की बहुलता रही, समाज में कोई अव्यवस्था नहीं रही।

उद्दालक मुनि को राजा अश्वपति ने उस समय के शासन व्यवस्था के विषय में जो कहा वह संसार के इतिहासा में कहीं नहीं मिलता। अश्वपति के यह वचन प्रशंसनीय हैं।

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न च मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।

मेरे सारे राज्यमें कोई चोर नहीं, कोई कंजूस, और अदानी नहीं कोई शराबी नहीं, यज्ञ न करने वाला कोई नहीं, कोई मूर्ख नहीं, कोई दुराचारी पुरुष नहीं तो फिर दुराचारिणी होने का तो प्रश्न नहीं उठता।

आइए राज राज्य में देखें जहाँ वाल्मिकी रामायण में वर्णित है सभी लोग मन, वचन और कर्म से पवित्र थे, सभी ज्ञानी थे, सम्पूर्ण अयोध्या और समस्त राष्ट्र में कोई मनुष्य झूठ बोलने वाला नहीं था।(1/7/14,15) उस अयोध्या में कोई कामी, कृपण, क्रूर, मूर्ख, नास्तिक देखने को भी न था।(1/6/8)

नानाहिताग्निर्वायज्वान क्षुद्रो वा न तस्करः।
कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृतो न संकर। 1/6/12

उस अयोध्या में प्रतिदिन यज्ञ न करने वाला, क्षुद्र, चोर, चरित्रहीन और वर्णसंकर भी कोई न था।

आर्यो की आदर्शवादिता के परिप्रेक्ष्य में ही वेद का यह उद्घोष है कि **"अहं भूमिम दाम् आर्याय्"**। इसके लिए आवश्यक है कि **"अराव्णः अपघ्नन्तः"** अर्थात् कृपण, अदानी, अनुदार, ईष्यालु और स्वार्थियों का उच्छेद किया जाए। उन अनार्यो व दस्युओं का विनाश आवश्यक है।

वैदिक वाङ्मय में 'इन्द्र' शब्द का अर्थ के आधार पर बहुत विस्तृत क्षेत्र है। **इदि** धातु से जिसका अर्थ परमैश्वर्य है यह शब्द बना अर्थात् परम ऐश्वर्य युक्त **"इन्दति परमैश्वर्यवान भवति"**। इस मंत्र में कहा है "इन्द्र को बढ़ाओ।" परन्तु हम केवल सांसारिक धनधान्य को परमेएश्वर्य नहीं कह सकते यहाँ विशेषतः अर्थ भी है आत्मज्ञानी – इन्द्र–आत्मा। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इन्द्र का अर्थ राजा भी किया है उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में राजा की योग्यता के लिए अथर्ववेद का यह मंत्र उद्धृत किया है।

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजी राजसु राजयातै। अथर्व 6.98.1

अर्थात् जो इस मनुष्य के समुदाय में इन्द्र = परमऐश्वर्य का कर्ता, शत्रुओं को जीत सके और जो शत्रुओं से पराजित न हो। राजाओं में सर्वोपरि विराजमान, प्रकाशमान हो।

मनुस्मृति में राजा को परामर्श किया है कि रात–दिन इन्द्रियों को वश में रखने का उपाय करता रहे क्योंकि जितेन्द्रिय ही प्रजाओं को अपने वश में रख सकता है।(मनु 7/44)

वास्तव में सफल राजा के लिए क्षत्रिय एवं ब्राह्मण गुणों का समन्वय आवश्यक है। मनु ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि "क्षत्रिय होकर भी जो संस्कार और ज्ञान में ब्राह्मण तुल्य है उसे सारे राष्ट्र का प्रबंध करना चाहिए।''

आत्मज्ञान से आत्मबल भी प्राप्त होता है। इस इन्द्र के लिए आत्मबल भी आवश्यक है। चाणक्य ने कहा है **"जितात्मा सर्वार्थैः संयुज्यते"**। इन्द्रियों में जो शक्ति है वह आत्मा की ही है। कृशकाय व्यक्ति भी यदि आत्मबल से युक्त हो तो वह पराक्रमी और साहसी सिद्ध होते हैं।

सिकन्दर के दूत ने जब मिश्र स्वामी संन्यासी को सिकन्दरे–आजम के समक्ष पेश होने के लिए कहा तो उस संन्यासी का उत्तर था मेरे रहने के लिए यह शस्य श्यामल वसुन्धरा, पहनने के लिए वल्कल वस्त्र, पीने हेतु कलकल करती नदी और भोजन के लिए मुट्ठी अन्न पर्याप्त है तो मुझे क्या आवश्यकता है उसके पास जाने की। मैं आत्मधनी हूँ मुझे यह तुम्हारा सिकन्दर क्या दे सकता है? इन्द्र के लिए शारीरिक बल भी आवश्यक है क्योंकि बल भी बहुत बड़ा ऐश्वर्य है। छान्दोग्योपनिषद् (7/8) में **"बलं वाव विज्ञानाद् भूयः अपि हि शतं विज्ञानवतामेको बलवानकल्पयते"** अर्थात सौ कोरे ज्ञानियों से एक बलवान श्रेष्ठ है।" परन्तु इस इन्द्र का बल दुखियों की रक्षा के लिए होना चाहिए। निरपराधों को सताने के लिए नहीं। यहां मर्यादापुरुषोत्तम राम के शब्द बड़े ही मार्मिक है। **"क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति"** क्षत्रिय लोग धनुष इसलिए धारण करते हैं ताकि किसी दुःखी की करुण पुकार उनके कानों में न पड़े।

आर्य वही कहलवाएगा जो **"शतहस्त समाहर सहस्रहस्तं संकिर"** का उपदेश माने। यजुर्वेद व ईशोपनिषद् के शब्द **"तेन त्यक्तेन भुंजीथाः"** उसके कानों में गूंजते रहें और जिसे वेद का आदेश हमेशा स्मरण रहे **"केवलाघो भवति केवलादी"।**

आज सारे विश्व में अराजकता है, आतंकवाद बढ़ रहा है अशांति और असुरक्षा का वातावरण है। अमेरिका जैसा देश, जो सबसे समृद्ध, विकसित, सभ्य एवं प्रफुल्ल राष्ट्र गिना जाता रहा है। भौतिक उन्नति के साधनों से परिपूर्ण वह देश आज आतंकवाद से भयभीत है, आर्थिक व्यवस्था से चरमरा रहा है दुराचारिता बढ़ रही है। सामाजिक व नैतिक मूल्यों का पतन तेजी से बढ़ रहा है। केवल उसकी ही बात क्यों करें सारे विश्व में यही कुछ हो रहा है।

आज आवश्यकता है **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"** की जहाँ आर्य हों दस्यु न हों। अशांति, कृपणता, स्वार्थी तत्वों का विनाश हो और इन्द्र अर्थात परमेश्वर्यवान् को बढ़ाने की क्षमता हो। मनुर्भव का भाव हो। शारीरिक, मानसिक, विद्या एवं ज्ञान की दृष्टि से हम सम्पन्न एवं सशक्त हों। आत्मबल से परिपूर्ण हों। इन उदात्त गुणों की समृद्धता प्रजा एवं राजा दोनों में हो और विश्व विज्ञानके विस्तार के साथ दीनों का आर्त्तनाद सुनाई न दे, श्रमार्जित द्रव्य को बाँट कर खाने व भ्रातृभाव की भावना हम सब में स्फुटित हो तभी हमारा उद्देश्य **"कृण्वन्तो विश्वमार्यम"** फलीभूत होगा और परमात्मा से प्रार्थना करते रहें **'अग्ने नय सुपथा राये।"**

गली मास्टर मूल चन्द वर्मा
फाजिल्का–152123 (पंजाब)

☞ *पृष्ठ 8 का शेष*

सद्विचारों के प्रचारक ...

सारे राष्ट्र में या अयोध्या नगरी में कोई झूठ बोलने वाला नहीं था।

क्वचिन्ना दुष्टस्तत्रासीत् परदाररतो नरः।
प्रशान्तं सर्वमेवासीद् राष्ट्रं पुरवरञ्च तत्।।

उस राज्य में पर स्त्री से प्रेम करने वाला कोई दुष्ट नहीं था समस्त राष्ट्र और राजधानी में सब प्रकार से शान्ति थी।

कामी वा न कदर्यो वा नृशंस पुरुषः क्वचित्।
दुष्टं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः।।

उस राजधानी में कोई कामी, कंजूस, क्रूर, मूर्ख और नास्तिक नहीं था।

इस प्रकार का शुद्ध और शान्त वातावरण संसार के किसी देश का नहीं था। योरोप अमेरिका में वैज्ञानिक और आर्थिक उन्नति कितनी भी हो। किन्तु नैतिक और मानवीय मूल्यों का स्तर हमारे देश की अपेक्षा बहुत गिरा हुआ है।

राम ने पुत्र, भाई, मित्र, पति और राजा के सभी सम्बन्धों को आदर्श रूप में उपस्थित किया विषम। से विषम परिस्थिति में वह दृढ़ रहे। राजसत्ता में

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

पत्र/कविता

अब तो केवल संगतिकरण करने की आवश्यकता है

सत्यार्थ प्रकाश को लेकर आर्य समाज के विद्वानों में चल रहे विवाद को अब शीघ्र समाप्त करने की आवश्यकता है। अब अति हो रही है। बात सरल–सी है मगर कहां से कहां चल पड़ी है। दो तथ्य हमें निर्विवाद लगते हैं–

(1) जिसे ''मूल प्रति'' कहा जाता है, उसका स्वीकार कर, उसी को परिपूर्ण करने की चेष्टा करना किसी भी स्थिति में न्यायोचित नहीं है। अन्य शब्दों में – परोपकारिणी सभा के द्वारा प्रकाशित अन्तिम तीनों संस्करण–37,38 एवं 39 वें संस्करणों में से किसी की भी वकालत करना सर्वथा अनुचित है। वितर्क–वितण्डा करना सरल है, और हठाग्रह करना, अन्यों का मानभंग करना तो इससे भी सरल है।

(2) उदयपुर से प्रकाशित संस्करण (जिसे ''मानक संस्करण'' कहते हैं) नितान्त विशुद्ध न होते हुए भी उसे स्तुत्य प्रयास मानते हैं। उसको तैयार करने में चाहे 3–4–5 महानुभावों का सक्रिय योगदान रहा हो, या दस विद्वानों का–यह भिन्न बात है। मगर प्रयास पारदर्शक था, प्रतिक्रियात्मक नहीं था। उसमें जो कमियां व दोष रह गये हैं, उन्हें विद्वानों को मिल बैठकर ठीक कर लेने चाहिए; और ऐसा करने में आवश्यकता अनुसार ''मूल प्रति'' से सहायता लेने में भी किंचित् संकोच नहीं करना चाहिए।

लेख–प्रतिलेखों के माध्यम से इस विषय में अब पर्याप्त विमर्श या होमवर्क हो चुका है। अब तो हमारे इन सारे संबद्ध मान्य विद्वानों को साथ मिल बैठकर इस विषय में केवल संगतिकरण ही करने की आवश्यकता है। सत्यार्थ प्रकाश में जितनी कम टिप्पणियां हो उतना ही अच्छा है। प्रकाशकीय, संपादकीय आदि भी अति संक्षिप्त होने चाहिएँ। मुंशी समर्थदान जी की सूचनाएं ही पर्याप्त हैं। जिज्ञासु पाठकों को ग्रन्थ में पाठ–निर्धारण कैसे किया गया है, विभिन्न संस्करणों में क्या–क्या पाठ था–यह सब जानने की इच्छा नहीं होती है। उन्हें तो स्वामी दयानन्द सरस्वती जी अपने इस ग्रन्थ में क्या लिखते हैं क्या कहना चाहते हैं–बस उसी को ही जानना होता है। श्री अरविन्द, स्वामी विवेकानंद आदि के ग्रन्थ देखिए, कितने विशुद्ध एवं निर्विवाद छपते हैं। और एक हम लोग हैं–विवाद करते रहने का स्वभाव बना रखा है। जिसका प्रचार करने में श्रम करना अपेक्षित है, आज उसीको विवादग्रस्त बनाये रखने में हम लोग प्रवृत्त हैं। अब तो बस है। संगतिकरण ही एक मात्र विकल्प है।

भावेश मेरजा
7–19 टाउनशिप,
पो. नर्मदानगर जि. भरुच
गुजरात– 392015

****

मन्त्रगीत

'वन्दे मातरम्'

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीम् अदितिं नाम वचसा करमा हे।
यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत्
।। यजु18.30।।

दिलाती ईश–प्रकृति वरदान।
मही से कोई नहीं महान।।
प्रसव मही का सृष्टि सजाता।
अन्न–ऐश्वर्य सब उपजाता।
दक्ष–वक्ष पर भूमि तुम्हारे,
समस्त लोकालोक समाता।
तानती तल पर क्षितिज वितान।
मही से कोई नहीं महान्।।1।।

तुम्हीं हमारी अदिति उदारी।
सुत करते वन्दना तुम्हारी।
सविता देव रश्मियों द्वारा,
भरते कोष पोष सुखधारी।
सिखाती धर्म–कर्म प्रतिमान।
मही से कोई नहीं महान्।।2।।

सुदृढ़ तुम्हारे भौतिक तल हैं।
आसन जमते यहीं विमल हैं।
दिव्य लोक अध्यात्म कला के,
यहीं विहँसते श्रेय कमल हैं।
कराती ईश्वर का अवधान।
मही से कोई नहीं महान्।।3।।

–देवनारायण भारद्वाज
'वरेण्यम्, अवन्तिका (I) रामघाट मार्ग
अलीगढ़ 202001 (उ.प्र.)

आर्य समाजों में परोपकार के काम हों

आज आर्य समाज केवल सन्ध्या हवन तक सीमित होकर रह गया है। जब कि आर्य समाज का छटा नियम है संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है।

अतः मेरा नम्र निवेदन है कि आर्य समाज के भवन को बारात घर मत बनाओ। इसमें परोपकार के कार्य चालु करो। जैसे स्वास्थ्य रक्षा–सेवा हेतु आयुर्वेदिक औषद्यालय खोलो 1. गरीब बच्चों की शिक्षा के लिए प्राथमिक हिन्दी संस्कृत पाठशाला शुरु करो। लड़कियों को सिलाई प्रशिक्षण देने के लिये व्यवस्था करो। आर्य समाज उन्नति करेगा। इनके अतिरिक्त भी उपकार के अन्य काम हो सकते हैं जैसे गर्मी में स्वच्छ पीने के पानी का प्याऊ। जिन समाजों में ऐसे काम हो रहे हैं वो प्रशंसा के पात्र हैं। जिन में नही हो रहे वहाँ शुभ कर्म करने में देर मत करो। हमारी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं। तन मन धन से सहायता करेंगे।

देवराज आर्य मित्र
WZ-428 **हरी नगर नई दिल्ली–64**

****

शराब के विरुद्ध भी आवाज़ उठाएँ

शराब के विरुद्ध भी आपको ज़ोरदार आवाज़ उठानी चाहिए। शराब एक ऐसा शैतान है जो इंसान तथा भगवान दोनों की दुश्मन है, और शराब पर चुप क्यों हैं?

मदिरा पर इतिहास का निर्णय :–

मदिरा हत्यारिन तथा अपंग बना देती है।

यह विनाशकारिणी तथा धोखेबाज़ है।

ज़ालिम है तथा अपना गुलाम बना लेती है।

धोखेबाज़ मित्र तथा भयंकर दुश्मन है।

अपराध को जन्म देती है और इंसान को बेहया बना देती है।

बीमारी को पैदा करती तथा सेहत की दुश्मन है।

पति–पत्नी के रिश्तों में दरार पैदा करती है तथा तलाक को बढ़ावा देती है।

व्यक्ति को पाप में प्रवृत्त करती है तथा समाज की दुश्मन है।

कुमारियों के कौमार्य को नष्ट करती है तथा औरतों को भ्रष्ट करती है।

नौजवान को पतन के मार्ग पर ले जाती है तथा इंसान को जानवर बना देती है।

राजनैतिक जीवन को भ्रष्ट बनाती है तथा राष्ट्र के आत्मिक नैतिक स्वरूप को तबाह कर डालती है। ज़मीर को मार देती है। और मन को मूढ़ बना देती है।

नन्दकिशोर आर्य
247, गली तकिया, बाजार सत्तोवाला
अमृतसर (पंजाब)

****

सूरतगढ़ में आर्य युवा समाज ने आयोजित किया साक्षरता कार्यक्रम

थर्मल कालोनी सूरत में स्थित एस.टी. डी.ए.वी. पब्लिक विद्यालय में आर्य युवा समाज के तत्वधान में साक्षरता अभियान प्रारम्भ हुआ। प्रथम दिवस निरक्षरों का स्वागत तिलक लगा कर किया गया तत्पश्चात विद्यालय के प्राचार्य श्री नमित शर्मा द्वारा दीप प्रज्ज्वलित कर कार्यक्रम का शुभ आरम्भ किया गया। प्राचार्य महोदय ने साक्षरता के महत्त्व को बताते हुए सभी निरक्षरों का उत्साह वर्धन किया। निरक्षरों को पुस्तकें, कापियाँ, पैन्सिल, रबड़ व अन्य सहायक सामग्री वितरित की गई। गायत्री मन्त्र का उच्चारण करवा कर अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं ने निरक्षरों को स्वरों व अंकों का ज्ञान करवाया। निरक्षरों में 35 पुरुष, महिलाएँ व बच्चे थे। सभी पढ़ने के लिए उत्साहित थे। प्रतिदिन सभी को जलपान करवाया जाता रहा। स्वरों के साथ–साथ व्यंजन, मात्राएँ, अक्षर जोड़ने व गिनती भी सिखाई गई। धीरे–धीरे सभी को दैनिक उपयोग में आने वाले सामान्य ज्ञान की जानकारी भी दी गई जैसे पैसे गिनना, जोड़ना, घटाना व अखबार पढ़ना जिसके तहत अधिकांश निरक्षरों न उत्साहजनक भागीदारी दर्ज करवाई। साक्षरता कार्यक्रम का समापन बहुत उत्साह व जोश से परिपूर्ण रहा। निरक्षरों के खिलौने, लंच बॉक्स, चप्पल, जूते व कपड़े भी वितरित किए। निरक्षर जन– जो अब साक्षर हो गए उन्होंने अपने पठन–पाठन व क्रिया कलाप द्वारा अपना नाम साक्षर श्रेणी में जुड़वा कर स्वयं का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित किया।

अम्बाला शहर में डी.ए.वी. ने मनाया वनमहोत्सव

वातावरण की स्वच्छता एवं सुरक्षा के लिए इस पवित्र धरा पर पेड़ पौधों का हरा भरा होना अत्यन्त आवश्यक है। इसी उद्देश्य के प्रति जनता जर्नादन को जागरूक करने की दृष्टि से डी.ए.वी. सी.सै. पब्लिक स्कूल अम्बाला शहर (हरियाणा) ने विगत वर्षों की भांति इस वर्ष भी वनमहोत्सव का आयोजन किया। इस आयोजन के द्वारा अम्बाला शहर, अम्बाला छावनी, एवं आसपास के क्षेत्रों में आवँला, नीम, शीशम, सफेदा, जामुन अमरुद आदि के 200 से ज्यादा पौधे रोपित किये गये। और पवित्र धरा को सुन्दर एवं हरा भरा रखने का संकल्प लिया गया। ''आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा'' नई दिल्ली एवं विद्यालय के राष्ट्रीय सेवा योजना ईकाई के कार्यक्रम अधिकारी श्री सुरेश कौल के मार्ग निर्देशन में ''वन महोत्सव'' कार्यक्रम आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम में मुख्यातिथि के रूप में राज्य समन्वय अधिकारी डा. चरणजीत कौर ने अपनी गरिमामयी उपस्थिति से कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई तथा स्वयमेव पौधों को रोपित भी किया। अनेकों चिकित्सीय पौधों के विषय में भी बताया।

प्राचार्य डा. अनिल पाठक ने वैदिक ज्ञान विज्ञान के द्वारा किस प्रकार से हम अपनी पृथ्वी को स्वच्छ एवं हरा भरा रखें इस पर विचार प्रकट करते हुये शिक्षकों छात्रों को सम्बोधित किया। बच्चों ने एक पौधा एक वार अवश्य लगाने का संकल्प लिया। कार्यक्रम में पधारे सभी महानुभावों का धन्यवाद एवं आभार प्रकट किया गया।

☞ *पृष्ठ 9 का शेष*

सद्विचारों के प्रचारक ....

लात मारकर 14 वर्षों तक वन में रहे और एकान्त में वास करते हुए भी कोई संतान पैदा नहीं की।

भरत ने राजसत्ता मिलने पर भी अस्वीकार किया और राम को ही अधिकारी मानकर चौदह वर्ष तक जनता की सेवा (राम की चरण खडाऊं को गद्दी पर रखकर) की।

उधर लक्ष्मण जी ने भी माता सीता जी के मुंह तक को नहीं देखा मात्र चरणस्पर्श ही 14 वर्षों तक करते रहे।

अब मंत्र की दूसरी बात है। उत्तम व पवित्र कार्य जो व्यक्ति करते हैं उनके किये गये कार्यों की उत्साह बढ़ाने के लिए प्रशंसा करनी चाहिए जिससे वे प्रेरित होकर और बढ़ चढ़ कर अच्छे कार्य करने में सन् लग्न हो जायें। इससे अन्या सामान्य व्यक्ति भी उनके कार्यो को देखकर शुभ कर्म करने की प्रेरणा लेंगें। इसके विपरीत यदि उनसे ईर्ष्या द्वेष रखेंगे तो वह अच्छे कार्य करने से कतराएंगें जिससे समाज की बहुत बड़ी हानि होगी।

वर्तमान समय में बाबा रामदेव जी मानव समाज के हित के लिए कितना बड़ा आन्दोलन चला रहे हें। हम सब को उन का साथ देना चाहिए उन्होंने निर्णय ले रखा है कि

हे ईश भारत वर्ष में शत् बार मेरा जन्म हो। कारण सदा ही मृत्यु का देशोपकार कर्म हो।।

मंत्र की तीसरी बात है कि ज्ञान को अपने व्यवहार अर्थात् आचरण का अंग बनाकर दूसरों को उपदेश देना चाहिए तब ही अन्य व्यक्ति आप के व्यवहार को देखकर आचरणवान् बन सकते हैं। यदि उपदेशक स्वयं कहे गये उपदेश का पालन नहीं करता है उसका प्रभाव अन्य श्रोताओं पर नहीं हो सकता।

मानव को मन वचन व कर्म को एक समान रखकर व्यवहार करना चाहिए। जैसा वेद का भी आदेश है।

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः। तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना।। यजु.40.3

भावार्थः– वे ही मनुष्य असुर दैत्य राक्षस तथा पिशाच आदि है। जो आत्मा में कुछ और है। जानते कुछ वाणी से बोलते और कहते कुछ और ही हैं। वे कभी अविद्या रूप दुःख सागर से पार हो आनन्द को प्राप्त नहीं हो सकते। और जो आत्मा मन वाणी और कर्म से निष्कपट एकसा आचरण करते हैं वे ही देव आर्य और सौभाग्यवान् सब जगत् को पवित्र करते हुए इस लोक और परलोक में अतुल्य सुख भोगते हैं। ।। 3।।

मन्त्र की चौथी बात है– हम वाणी को वश में रखके उसका इस प्रकार प्रयोग करें कि सब ओर आनन्द और माधुर्य की वृद्धि हो।

वाणी ऐसी बोलिए, मन का आपा खोय।
ओरोंकोशीतलकरे,आपभीशीतलहोय।।
इत्योम

आर्य नगर–डिमौली
प. महीउद्दीनपुर–जनपद मेरठ–
उ.प्र.–250205

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 03-04/10/2012
रजिस्ट्रेशन नं. आर0 एन0 आई0 39/57

डी.ए.वी. खारघर (महाराष्ट्र) में आर्य चेतना शिविर

डी.ए.वी. इंटरनेशनल स्कूल, खारघर में 'आर्य चेतना शिविर' का आयोजन *आर्य चेतना केन्द्र* के अन्तर्गत डी.ए.वी. पश्चिमी क्षेत्र डॉ. के.बी. कुशल के मार्गदर्शन में किया गया। पुष्पगुच्छ तथा श्रीफल प्रदान करके मुख्य अतिथि माननीय संतोष यादव जी का स्वागत किया गया। दो दिन तक चलने वाले इस कार्यक्रम में विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया जिसमें डी.ए.वी. पाठशालाओं में कार्यरत 180 अध्यापक एवं अध्यापिकाओं ने भाग लिया। आर्य चेतना शिविर की हिन्दी तथा अंग्रेजी वाद–विवाद प्रतियोगिताओं में चौदह प्रतियोगियों ने भाग लिया। कार्यक्रम के दूसरे भाग में लेखन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसके विषय थे, 'समाज का शिक्षा से रिश्ता' और 'आर्य समाज द्वारा मूल्य शिक्षा'। मंत्र एवं प्रार्थना से संबंधित प्रतियोगिता का मूल्यांकन दो माननीय निर्णायकों श्रीमती दीपिका भारद्वाज तथा डॉ. देवदत्त सरोदे द्वारा किया गया। हिन्दी तथा अंग्रेजी वाक् प्रतियोगिता के विषय थे, 'भारतीय संस्कृति पर आर्य समाज का प्रभाव' और 'भारतीय रीति सुधार में आर्य समाज का योगदान'। सभी प्रतियोगियों ने अपने विचारों से सभी श्रोता था निर्णायक गणों को मंत्र–मुग्ध कर दिया।

कार्यक्रम के अंत में पारितोषिक वितरण के उपरांत सभी उपस्थित जनों का प्राचार्या श्रीमती सीमा मैन्दिरत्ता द्वारा धन्यवाद करते हुए कार्यक्रम का समापन शान्ति पाठ से किया गया।

डी.ए.वी. शाहाबाद मा. में किया गया फलदार और छायादार वृक्षारोपण का कार्यक्रम

डी.ए.वी.सै. पब्लिक स्कूल, शाहाबाद मा' के प्रागंण में **'वन महोत्सव'** दिवस मनाया गया। प्रधानाचार्या श्रीमती सरिता कौशिक, स्कूल के वाइस चेयरमैन डा. नरेन्द्र बंसल, स्कूल प्रबन्धन के अधिकारीगण श्री बलदेव राज सेठी, श्री राजबीर सिंह हैप्पी, श्री राजेन्द्र सेठी, श्री कुलदीप कक्कड, अध्यापक कंवल गाबा, ज्योति खुराना, मोनिका, सीमा और समस्त विद्यार्थियों ने स्कूल के प्रागंण में लगभग 250 के करीब फलदार एवं छायादार पेड़–पौधे लगाये। इस अवसर पर अपने संदेश में प्रधानाचार्या ने कहा कि आज पर्यावरण संतुलन बिगड़ चुका है। मौसम में बहुत बदलाव आ चुका है। अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए हम पेड़–पौधे काटते जा रहे हैं। पहले चारों तरफ हरियाली ही हरियाली नज़र आती थी। पर आज हमने उपजाऊ और उर्वरा जमीन पर कंकरीट की इमारतें खडी कर दीं, जिसके भंयकर परिणाम हमारे सामने आ रहे हैं। हमें अधिकाधिक पेड़–पौधे लगाकर इस बिगड़े हुए पर्यावरण को सुधारना होगा। तभी इस धरती पर हम सुखपूर्वक सांस ले सकते हैं। इस अवसर पर बच्चों को 'पर्यावरण सुरक्षा' का प्रण भी दिलवाया गया। स्कूल प्रांगण कि ''अधिक से अधिक पेड़–पौधे लगाएँ। धरती को हरा भरा बनाएँ। ''बच्चों के इस नारे से गूँजने लगा ।

डी.ए.वी. बिलगा (जालन्धर) ने लगाये पेड़-पौधे

आर्य समाज व डी.ए.वी. संस्थाओं दवारा समस्त मानव समाज को सुखद वातावरण प्रदान करने में सहयोग देना परम कर्त्तव्य माना जाता है। इसका एकमात्र विकल्प अधिक से अधिक पेड़–पौधे लगाना है। इस कार्य में डी.ए.वी बिलगा सदैव अग्रणी रहा है। उल्लेखनीय है कि विद्यालय में प्रत्येक वर्ष वनोत्सव मनाया जाता है और बच्चों को निशुल्क फलदार और फूलदार औषधीय पौधे वितरित किए जाते हैं। इतना ही नहीं पौधे लगाने के बाद उनके रख–रखाब और देखभाल करने के लिए बच्चों को प्रेरित किया जाता है।

इसी उपलक्ष्य में इस वर्ष भी सितम्बर मास में वनोत्सव मनाया गया, जिसमें लगभग 500 पौधे वितरित किए गए। उत्सव में इलाके के नायब तहसीलदार विशेष रूप से पधारे। इस कड़ी को आगे बढ़ाते हुए संस्था द्वारा खोखेवाल रोड बिलगा में पंचायत की खाली पड़ी जमीन पर 100 से अधिक फलदार व औषधीय पौधे लगाए गए। संस्था की ओर से विद्यालय के आसपास के वातावरण को हरा भरा व प्रदूषण रहित रखने के लिए स्कूल के आगे से गुजरने वाली सड़क के दोनों ओर छायादार वृक्ष लगाए गए तथा बच्चों ने अपने घरों में फलदार पौधे लगाए गए।

इस प्रकार डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल बिलगा समस्त मानव समाज को सुखद वातावरण प्रदान करने में सहयोग दिया।

मुद्रक व प्रकाशक – **श्री प्रबोध महाजन,** सभा मंत्री द्वारा **मदन गोयल** के प्रबंध में **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – **श्री पूनम सूरी**